द्वितीय अध्याय

हिन्दी गद्य का आरम्भ और विकास

Chapter-2

द्वितीय अध्याय

हिन्दी गद्य का आरम्भ और विकास

हिन्दी गद्य का विकास

गद्य शब्द 'गद्' धातु से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है कहना अथवा बोलना। जहाँ पद्य में भावना का अधिक्य होता है और इस कारण से उसमें स्वभावतः लयात्मकता, संगीतात्मकता, कल्पनाशीलता, छंद बद्धता आलंकारिकता व रसात्मकता का समावेश हो जाता है, वही गद्य में बौद्धिकता के कारण विचारों में प्रकाशन को तो महत्व मिलता ही है भाव-प्रकाशन में भी स्वछंदता रहती है। तार्किकता, स्वाभाविकता, सुबोधता, प्रभावोत्पादकता, विश्लेषणात्मकता आदि की दृष्टि से गद्य का महत्व निस्संदेह ही अधिक है। यही कारण है कि आचार्य वामन ने 'गद्यकवीनां निकषं वदन्ति' कहकर गद्य की महत्ता प्रतिपादित की। पद्य में तो लय, छंद, रस एवं अलंकार की सहज प्रस्तुति होती ही है परन्तु गद्य में भी भाव और विचार के उचित सामंजस्य द्वारा लयात्मकता, रसात्मकता एवं आलंकारिकता का समाहार संभव है। अन्तर केवल इतना है कि जहाँ पद्य में लय नियत होती है वही गद्य में अनियता।[1]

सच तो यह है कि गद्य की परम्परा अत्यन्त ही प्राचीन है। गद्य के विकास में प्राचीन गद्य-परम्परा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

19वीं सदी से पूर्व से वर्तमान तक गद्य का विकास

इसे एक तरह से गद्य का बीज वपन काल मान सकते हैं। उस समय हिन्दी का स्वरूप विकसित नहीं हुआ था अतः गद्य प्रचलित स्थानीय भाषाओं में ही उपलब्ध है। प्राचीन गद्य के प्रमुख रूप इस प्रकार हैं :

1) भोजपुरी गद्य – बनारस के गाहड़वाल नरेश गोविन्दचन्द्र के सभा पंडित दामोदर शर्मा ने उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण की रचना की। इस रचना का काल 12वीं शदी के पूर्वार्द्ध में माना गया है। व्याकरण की शिक्षा देने के उद्देश्य से यह ग्रंथ लिखा गया था।

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण' एक अत्यंत महत्वपूर्ण व्याकरण-ग्रंथ है। इससे बनारस और आस-पास के प्रदेशों की संस्कृति और भाषा आदि पर अच्छा प्रकाश पड़ता है और उस युग के काव्य-रूपों के सम्बन्ध में भी थोड़ी-बहुत जानकारी प्राप्त होती है। डॉ. ओमप्रकाश गौतम भी इसे गद्य भाषा का प्रयोग करने वाली हिन्दी भाषा-परिवार की प्राचीनतम पुस्तक मानते हैं।

2) राजस्थानी गद्य -राजस्थान के चारण-भाटों ने पद्य के साथ-साथ धर्म, इतिहास, नीति आदि अनेक विषयों से संबंधिक रचनाएं गद्य में लिखी हैं। ''राजस्थानी गद्य की प्रचीनतम रचनाएं 13वीं शताब्दी की मिलती हैं। जिनमें 'आराधना (1273 ई.), 'बालशिक्षा' (1279 ई.), 'अतिचार'(1283 ई.) प्रसिद्ध हैं।मुनि जिन विजय द्वारा संपादित प्राचीन गुजराती गद्य-संदर्भ में से संगृहीत हैं।''

राजस्थानी गद्य के तीन रूप हैं - वचनिका, ख्यात तथा बात। वचनिका में तुकांत गद्य का प्रयोग होता है तथा घटनाएँ प्रायः ऐतिहासिक होती हैं। 'अचलदास खींचीरी वचनिका (शिवदास), 'वचनिका राठोर रतनसिंह जीरी, (खिरिया जगा) तथा 'वचनिका रतन महेश दासोत्तरी' प्रमुख हैं।

ख्यात में भी शौर्यपूर्ण कथा कही जाती है। 'मुहणौत नैणसीरी ख्यात', नयनसिंह द्वारा रचित हैं जो अत्यंत ही प्रसिद्ध है। 'बीकानेररी ख्यात', 'उदयपुरी ख्यात, बांकीदासरी ख्यात आदि भी प्रमुख हैं। 'राणा उदैसिंह री वात', 'हाडे सुरजमल री वात', 'रामदास वैरावतरी आखड़ी री वात आदि प्रसिद्ध हैं।

इसके अतिरिक्त 'धनपालकथा', 'अंजना सुंदरीकथा', 'उपदेशमाला' 'तत्व विचार', 'कल्पसूत्र' आदि रचनाएँ भी उपलब्ध हैं।

3) मैथिली गद्य - मैथिली गद्य का प्राचीनतम ग्रंथ कवि शेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर-कृत 'वर्णरत्नाकर' है विद्यापति की 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' में गद्य-पद्य का प्रयोग हुआ है। 'कालियदमन' 'विद्याविलाप', 'हरिश्चन्द्र नाटयम' आदि नाटकों में पद्य-गद्य का प्रयोग मिलता है। इनके अतिरिक्त मैथिली में पत्र भी प्राप्त होते हैं।

4) ब्रजभाषा गद्य - भक्तिकाल के प्रारंभ से ही ब्रजभाषा का साहित्यिक महत्व बढ़ गया था इस कारण ब्रजभाषा में अनेक ग्रंथों की रचना हुई, जिनमें प्रमुख हैं - नाभादास-कृत 'अष्टयाम' और 'ध्रुवदास कृत 'सिद्धान्त विचार'।

'श्रृंगार रस मंडल' विट्ठलनाथ जी के संस्कृत ग्रंथ का 18वीं शदी में किया गया अनुवाद है 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता और दौ सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' मूलरूप में गोकुलनाथी जी द्वारा कथित है बाद में उनके शिष्यों ने इन्हें संग्रहीत कर ग्रंथ-रूप प्रदान किया।

टीका साहित्य के अन्तर्गत 'भागवत' पर चतुरदास, प्रियादास एवं सेवाराम मिश्र की तथा 'मानस' पर महन्त राम चरणदास और हरिहर प्रसाद की टीकाएँ उल्लेखनीय हैं।

हरिचरणदास-कृत 'कविप्रिय' पर 'कविप्रियाभरण – तिलक', 'रसिकाप्रिया' पर तिलक तथा 'हरिप्रकाश टीका', 'सुरति मिश्र' कृत 'अमर चन्द्रिका टीका', 'जानकीदास' कृत 'रामचन्द्रिका टिप्पण' 'शिक्षा पत्र' पर 'गोपेश्वर कीटीका', भक्तमाल की प्रियादासीय टीका पर अग्रनारायण दास-वैष्णवदास कृत भक्तिरस बोधिनी, टीका, रसराज पर प्रताप साही की टीका आदि भी प्रमुख हैं।

ब्रजभाषा गद्य के अनुदित ग्रंथों में सुरतिमिश्र की 'बैताल पच्चीसी' दामोदर दास का मार्कंडेय-पुराण तथा मेघराज प्रधान की अध्यात्म रामायण प्रमुख हैं।

अन्य रचनाओं में हरिराय के नाम से प्रसिद्ध 'नित्यकृत्य', श्रीकृष्ण प्रेमामृत, अज्ञातनाम लेखकों की 'ब्रह्म जिज्ञासा', 'वेदान्त निर्णय', प्रियदास रचित 'सेवक जू की चरित्र' तथा दामोदर स्वामी रचित 'भक्ति विवेचन' उल्लेखनीय हैं।

5) अवधीगद्य : अवधी गद्य अत्यल्प मात्रा में है। ''उक्ति व्यक्ति विवृक्ति (15वीं शदी) नाम की एक औक्तिक व्याकरण रचना की प्रति पाटनभांडार में हैं। इसमें अवधी वाक्य संस्कृत रूपान्तर सहित लिखे गये हैं।'' भानुमिश्र की रस विनोद (1793 ई.) पद्य-गद्य में है। नित्यनाथ एवं प्रियादास ने भी अपने ग्रंथों में अवधी गद्य का प्रयोग किया है।

6) खड़ी बोली – खड़ी बोली दिल्ली-मेरठ तथा आस-पास के क्षेत्र की बोली है। मुसलममानों द्वारा दिल्ली को राजधानी बना लिए जाने पर राजनैतिक एवं व्यापारिक संपर्क की दृष्टि से इस बोली की महत्व बढ़ गया। अमीर खुसरों ने देहलवीर कहकर इसी बोली में पहेलियाँ और मुकरियाँ लिखीं।

– यही देहलवी मुसलमान शासकों के साथ-साथ दक्षिण तक पहुँची वहाँ के मुसलमान साहित्यकारों ने अपनी भाषा को 'देहलवी', 'हिन्दवी' तथा 'दक्खिनी' कहा। औरंगाबाद, बीजापुर, गोलकुण्डा तथा गुलबर्गा में दक्खिनी भाषा को पर्याप्त महत्व मिला।

दक्खिनी हिन्दी की रचनाओं के अन्तर्गत ख्वाजा बंदेनवाज गेसूदराज की मेराजुल आशिकीन, संतशाह बुरहानुद्दीन जानम की 'काल्मितुल हकायक', अब्दुस्समद की 'तफसीरे बहावी', तथा मुल्लावजही की 'सबरस' विशेष उल्लेखनीय है।

उत्तर भारत में भी समानन्तर रूप से खड़ी बोली की रचनाएँ लिखी जाती रहीं।अकबर के दरबारी कवि गंगरचित 'चंद-छंद बरनन की महिम' की प्रमाणिकता के सम्बन्ध में मतभेद है। 'गोरक्ष शतम् टिप्पण' पर पूर्वी हिन्दी का प्रभाव है। 'गोसट गुरू मिहरिबानु' पर पंजाबी का प्रभाव है।

रामप्रसाद निरंजनी का 'भाषा योगवशिष्ठ' तथा दौलतराम जैन रचित 'भाषा पद्मपुराण' अथवा 'पद्मपुराण वचनिका' प्राकृत की जैन राम–कथा का राजस्थानी ब्रजभाषा पभावित खड़ी बोली में अनुवाद विशेष महत्वपूर्ण है।

आधुनिक गद्य का आरम्भ

19वीं शदी के पूर्वार्द्ध से ही हिन्दी के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित होने लगीं।[2]

वैदिक काल से उन्नीसवीं शदी तक किसी न किसी रूप में गद्य–सृजन की परम्परा चलती रही। भारत में गद्य विधा को पाश्चात्य साहित्य की देन कहना तो उचित नहीं है, किन्तु इसे भी नहीं अस्वीकार सकते कि आधुनिक हिन्दी गद्य की भूमिका में पाश्चात्य प्रेरणा तथा विदेशी प्रभाव रहा है। मध्यकाल में मुलसमानों का प्रभाव स्पष्टः परिलक्षित होता है।भारतीय सृजन में फारसी उर्दू का प्रभाव देखने को मिलता है। दो संस्कृतियों के सम्मिलन का प्रभव जन–जीवन पर ही नहीं अपितु धर्म, दर्शन, कला व साहित्य को भी प्रभावित करता है। भारत में अंग्रेजों के आगमन से यहाँ की संस्कृति व साहित्य भी अभिनव चेतन से अनुप्राणित हुआ। इस संदर्भ में प्रो. दीनानाथ शरण ने लिखा है कि – "आधुनिक हिनदी गद्य का उद्भव अंग्रेजों की प्रेरणा से ही हुआ, ऐसी मेरी निजी मान्यता है। हिन्दी की आधुनिक गद्य शैली के उद्भव और विकास में अंग्रेजों द्वारा संस्थापित फोर्ट विलियम कालेज तथा ईसाई मिशनरियों से प्रेरणा ग्रहण कर जिस गद्य साहित्य का हिन्दी में उद्भव हुआ, वह निस्सन्देह अंग्रेजी प्रभावों की सबसे बड़ी देन है। अंग्रेजी संस्पर्श ने हिन्दी के गद्य साहित्य को कहानी उपाख्यान की संकीर्ण गलियों से बाहर निकाल कर उसे बाह्य संसार के चौराहे पर ला खड़ा किया।

डॉ. गौतम का इस संदर्भ में कथन है कि "उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोपीय संस्कृतिक संपर्क, विशिष्ट राजनीतिक परिस्थिति, नवीन शिक्षा–व्यवस्था और प्रेस जैसा विराट साधन प्रदान कर हिन्दी गद्य के विकास के लिए पूरा अवसर उपस्थित किया, बौद्धिक और व्यावहारिक जीवन के विकास के साथ गद्य की आवश्यकता भी बढ़ने लगी। इस संक्रान्ति काल में खड़ी बोली ही गद्य के गुरु–गम्भीर भार को वहन करने की क्षमता से सम्पन्न पाई गई। उर्दू और हिन्दुस्तानी के रूप में मुसलमानों के साथ वह देश के अधिकतर नगरों में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। फोर्ट विलियम कालिज में और अन्यत्र गद्य–भाषा के रूप में वह अपनी योग्यता का परिचय दे चुका था। शिक्षा, जन–व्यवहार, राजकीय कार्य, धर्म–प्रचार और पत्र पत्रिकाओं में भी अपना स्थान बना चुकी थी। ब्रजभाषा राजस्थानी आदि भाषाएँ अपने प्रदेशों और प्रेमियों तक सीमित थीं। गद्य क्षेत्र में वे खड़ी बोली से प्रभावित होने लगींथीं। इन परिस्थितियों में यह उचित ही हुआ कि हिन्दी–प्रदेश के

लेखकों ने खड़ी बोली को गद्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया।

पाश्चात्य संस्कृति ने हिन्दी गद्य को जन्म नहीं दिया किन्तु विविध विधाओं में नूतन शैलियाँ प्रदान कर पुनर्जागरण किया। हिन्दी गद्य को अभिनव प्रेरणाएँ प्रदान कर सृजनशीलता की नई दिशा दी।

योरोपीय दृष्टि ने खड़ी बोली को जन साधारण की भाषा बनाना उचित समझा। ईसाइयों ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को हृदयङ्गम कर खड़ी बोली को व्यापक प्रचार करना चाहा। सर्वप्रथम अपने धर्म का प्रचार करने के लिए बाईबिल का हिन्दी में अनुवाद कराया। ईसाई मिशनरी ने जिस भाषा को अपनाया, उसका स्वरूप इस प्रकार था – 'परमेश्वर ने अपने वचन से स्वर्ग और पृथ्वी को सिरजा परमेश्वर ही अनादि और सर्वशक्तिमान है। वह जो चाहे सो करता है उससे न चाहा कि स्वर्ग और पृथ्वी और उनके समस्त विभव एक ही बार प्रकट हों परन्तु धीरे–धीरे प्रकट और सिद्ध हों क्योंकि उसने प्रथम ही से सबका ठिकाना गिनती माप र तौल ठहराया था सो परमेश्वर ने छःदिन में स्वर्ग और पृथ्वी को उत्पन्न किया।

ईसाइयों ने इस तरह अनेक पुस्तकों के हिन्दी – अनुवाद प्रकाशित कराए गद्य–ग्रन्थों में मत परीक्षा, धर्म, अधर्म परीक्षा, स्त्रियों का वर्णन, मूर्तिपूजा का वृत्तांत आदि प्रसिद्ध थे।

इन संस्थाओं में – अमेरिकन मिशन, अमेरिकन ट्रेक्ट सोसायटी, क्रिश्चियन एजूकेशनल सोसायटी, नार्थ इण्डिया औगजीलरी बाईबिल सोसायटी, क्रिश्चिन लिटरेरी सोसायटी, बाईबिल ट्रान्सलेनश सोसायटी, नार्थ इण्डिया क्रिश्चियन ट्रेक्ट एण्ड बुक सोसायटी आदि का नाम उल्लेखनीय है।

इन सोसायटियों ने धर्म पुस्तकों के अतिरिक्त विश्व के महापुरुषों का जीवन चरित्र भी प्रकाशित करने में योगदान दिया। 'महारानी विक्टोरिया, महाराजा सप्तम एडवर्ड सिकन्दर महान आदि अनेक पुस्तकें प्रकाशित की। स्वास्थ्य की दृष्टि से 'तपरोग', 'हैजे का वृत्तान्त', 'भले चंगे रहने का उपाय', 'बालकों की आरोग्यता', 'बालोत्पन्न शिक्षा' तथा 'निर्बलता की आवश्यकता' आदि शीर्षक से पुस्तकों का प्रकाशन किया। इसी तरह हिन्दी भाषा में अनेक पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन की ओर ध्यान दिया। यद्यपि ईसाइयों का मुख्य लक्ष्य अपने धर्म का प्रचार मात्र था किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दी गद्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सेवाएं अर्पित कीं।

इन संस्थाओं द्वारा अनेक गद्य कृतियों का प्रकाशन किया गया जिससे हिन्दी गद्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त हुआ।

प्रथम चार आचार्यों का योगदान

हिन्दी गद्य के विकास की भूमिका में प्रथम चार हिन्दी गद्य आचार्यो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है –जिनके नाम हैं– मुन्शी सदासुखराय, सादल मिश्र, लल्लूलाल व सैयदइंश अल्लाखां। सदलमिश्र एवं लल्लूलाल ने फोर्ट विलियम कालेज को डॉ. जॉन गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से हिन्दी गद्य की पाठ्य पुस्तकों का निर्माण किया जबकि सदासुखराय व इंशा अल्लाखां ने स्वान्तः सुखाय हिन्दी गद्य का सृजन कर मौलिक साहित्य प्रदान किया है।

1) मुन्शी सदासुखराय :

मुन्शी ने 'सुखसागर' नामक गद्य–कृति का प्रणयन किया। इनकी भाषा में नवीनता एवं परिष्कृतता नहीं है अपितु पुराना पाण्डिताऊपन है। कहीं–कहीं पर तो ग्रामीण शब्दों का भी स्वतंत्रता के साथ प्रयोग किया गया है। भाषा का आदर्श यहाँ प्रस्तुत है।

''इससे जाना गया कि संस्कार का भी प्रभाव नहीं, आरोपित उपाधि है जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्ष में चाण्डाल से ब्राह्मण हुए और जो क्रिया भ्रष्ट हुई तो वह तुरन्त ही ब्राह्मण से चाण्डाल होता है। यद्यपि ऐसे विचार से लोग हमें नास्तिक कहेंगे, हमें इस बात का डर नहीं है। जो बात सत्य हो उसे कहना चाहिए। कोई बुरा माने कि भला माने। विद्य इस हेतु बढ़ते हैं कि तात्पर्य इसका (जो) सतोवृत्ति है, वह प्राप्त हो और उसके निज स्वरूप में लय चाहिए। इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराई की बातें कहके लोगों को बहकाइए और फुसलाइए और सत्य को छिपाइए व्यभिचार कीजिए और सुरापान कीजिए। तोता है सो नारायण का नाम लेता है, परन्तु उसे ज्ञात तो नहीं है।'' मुन्शी जी ने खड़ी बोली में भाषा आदर्श रूप प्रस्तुत किया जिसका अनुकरण ईसाइयों ने बाइबिल अनुवाद करानेके लिए किया।

2) सदल मिश्र

ये कलकत्ता पहुँचकर फोर्ट विलियम कालेज में सेवा करने लगे थे। संवत 1867 में रामचरित मानस का संशोधित स्वरूप तैयार किया। इससे पूर्व संवत 1860 में नासिके तो पाख्यान का हिन्दी अनुवाद किया। इनके गद्य के संदर्भ में श्रीमती सावित्री शुक्ल ने लिखा है – मिश्रजी के गद्य की सबसे बड़ी बात यह है कि योजना बहुत ही सरल है। उनके नासिके तोपाख्यान में भाषा का तोड़मरोड़ वैसा नहीं है, जैसा कि लल्लूलाल के 'प्रेमसागर' में। कहीं–कहीं पर वाक्यों की गठन बड़ी अदभुत है। उदाहरण के लिए 'लगी कहने' तथा 'छन एक तो मूर्छित रहीं', इसी प्रकार 'और' के स्थान पर 'वो' का प्रयोग करते थे। मिश्र जी की शैली से हिन्दी गद्य नये जन्म को ग्रहण कर था। उनके गद्य में मुहावरों का विशेष प्रयोग हुआ है और उसमें सजीवता उनके गद्य का विशेष गुण है। उदाहरणत : ''इतने में जहाँ से सखी–सहेली जात–भाइयों की स्त्री सब दौड़ी हुई

आई, समाचार सुन जुड़ाई मगन हो हो नाचने बजाने गाने लगीं वो अपने–अपने देह से गहना उतार–उतार सेवकों को देने लगीं; और अगणित रुपया अन्न वस्त्रव राजा–राने ने ब्राह्मण को बोल बोला दान दिया। आनन्द बधावा बाजने लगा। हर्षित हो नरेश ने वहाँ से सभा में जा ऋषि से कहा कि महाप्रभु मेरा बड़ा कलंक मिटाया है। इस आनन्द का कुछ वारापार नहीं । अब निश्चित हो यहाँ विराजिए, कन्या मंगा आपको मैं दूँगा।''

मिश्रजी ने गद्य में सरलता, सहजता, लचीलापन और सुगमता का पूर्ण प्रवाह है। सहज रूप से मुहावरों का प्रयोग भी हुआ है, जैसे ''फूलों फलों, बात काना–कानी होने लगी। इसी तरह दुहरे पदों के प्रयोग से भाषा में अभिव्यंजना की शक्ति का समावेश हो गया।

श्री मिश्र के कालेज में सेवा करते हुए हिन्दी पाठ्य पुस्तकों का निर्माण भी किया तथा अनेक गद्य–कृतियों का संशोधन कार्य भी किया।

लल्लूलाल जी :

हिन्दी गद्य के जन्मदाताओं में इनका नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्हें उर्दू, अंग्रेजी, संस्कृत और ब्रजभाषा विशिष्ट ज्ञान था। इन्होंने जिन पुस्तकों का अनुवाद किया, उनके नाम इस प्रकार हैं – ''सिंहासन बत्तीसी'', ''शुकुन्तला'' बैतालपचीसी, नाटक तथा माधवानल। इन्होंने कुछ मौलिक सृजन भी किया। इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं – प्रेमसागर 'राजनीति', 'भाषा' 'माधवविलास सभाविलास', 'कायदा', लत्तायक हिन्दी तथा लालचन्द्रिका।'

लल्लूलालजी ने भाषा की दृष्टि से परिवर्तन किया। सामायिक शैली से हटकर परिष्कृत स्वरूप प्रदान करने का सतत् प्रयत्न किया। उर्दू बहुत शब्दों की परम्परा का परित्याग कर संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को प्रतिस्थापित करने का साहस किया। उदाहरणतः – 'इतनी कथा कह श्री शुक्देवीजी बोले – 'महाराज बाणासुर से इसी भांति की बातें सुनश्री महादेवजी ने बिलखाया मन ही मन इतना कहा कि मैंने तो साधुजान के बीच दिया अब यह मुझी से लड़ने को उपस्थित हुआ है। इस मूर्ख को बल का गर्व भया, यह जीता बचेगा। जिसने अहंकार किया जो जगत से आन बहुत न जिया। ऐसे मन ही मन कह श्री महादेवजी बोले कि बाणासुर ! तू मत घबराय, तुझसे युद्ध करने वाला थोड़े दिन के बीच यद्ध कुल में कृष्णावतार होगा, उस बिन त्रिभुवन में तेरा सामना करने वाला कोई नहीं। यह वचन सुन बाणासुर अति प्रसन्न हो बोल, नाथ ! वह पुरुष कब अवतार लेगा ? मैं कैसे जानूँगा कि वह कहा उपजा ? हे राजा शिवजी ने एक ध्वजा बाणासुर को देके कहा कि इस बैरख को ले जाय अपने मन्दिर के ऊपर खड़ी कर दे। जब यह ध्वजा आपसे आप टूट कर गिरे, तब तू जानियों कि मेरा रिपु जन्म।'

लल्लूलालजी के गद्य की विशेषता है कि संस्कृत तद्भव शब्दों के प्रयोग के साथ ब्रजभाषा को पर्याप्त स्थान दिया है। लम्बे वाक्यों के प्रयोग भी देखने को मिलते हैं। स्थान – स्थान पर अनुप्रास – अलंकार की छटा दिखाने का प्रयत्न दिखाई देता है। भाषा में गद्य–पद्यात्मक रूप माधुर्य एवं आल्हादपूर्ण है। लल्लूलाल की भाषा में ब्रजभाषा पन लक्षित होता है। कहीं–कहीं पर तुर्की शब्दों का भी समावेश हो गया है।

इन्शा अल्लाखाँ

इन्होंने 'रानी केतकी की कहानी' की रचना की। यह कृति सर्वथा मौलिक है। इस कृति से भाषा का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है – सिर झुकाकर नाक रगड़ता हूँ, उस समय अपने बनाने वाले के सामने जिसने हम सबको बनाया और बात ही बात में कर दिखाया कि जिसका भेद किसी ने पाया। जातियाँ, जातियाँ जो सांसें हैं, उसके बिन ध्यान यह सब फाँसे हैं। यह कलका पुतला जो अपने उस खेलाड़ी की सुध रक्खे तो खटाई में क्यों पड़े और कड़ुवा–कसैला क्यों हो। उस फल की मिठाई चक्खे जी बड़ों से बड़े अंगलों ने चक्खी है।

देखन को दो आँखे दीं, और सुनने को दो कान।

नाक भी सबसे ऊँची कर दी मरदों को जो दान।

इन्शा अल्लाखाँ के गद्य की सबसे बड़ी विशेषता है कि पूर्ववर्ती तीनों आचार्यों से अधिक मनोहर और चित्ताकर्षक है। सदासुखराय की तरह संस्कृतनिष्ठ शब्दों के प्रति पूर्वाग्रह नहीं है और न सदल मिश्र की तरह उर्दू से अछूती ही। लल्लूलालजी की तरह ब्रजभाषा पन का पुट भी नहीं है अपितु इन सभी से पुष्ट एवं परिमार्जित है। इनकी भाषा के संदर्भ में कहा गया है कि – ''इनकी भाषा में हिन्दी और उर्दू के कृदन्त क्रियाओं और विशेषणों का प्रयोग हुआ है। इन्होंने कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, उदाहरणार्थ 'आतियां', जातियां 'बहलातियाँ' जिन्हें बाबूश्याम सुन्दरदास पंजाबी का प्रभाव मनाते हैं।

भाषा का एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है – ''कोई क्या कह सके, जितने घाट दोनों राज की नदियों में थे, पक्के चांदी के थक्के से हो कर लोगों का हक्का–बक्का कर रहा। निबाडे, भौलिए, बजरे, लचके, मोरपङ्खी, स्यामसुन्दर और रामसुन्दर जितनी बढ़ की नावें थीं, सुनहरी, सजी–सजाई, कसी–कसाई और सौ–सौ लचके खतियाँ, आतियाँ, जातियाँ, ठहरातियाँ, फिरातियाँ थीं। उन सभी पर खचाखच कंचनिया, रामजानियाँ, डोमिनियाँ, भरी हुई अपने–अपने करतबों में नाचती,गाती , बजाती कूदती, फांदती घूमे मचातियाँ, जम्हातियाँ, उँगलियाँ नचातियाँ और ढुली पड़तियां थी।''

इन्शा अल्ला खाँ की भाषा कवितामय और तुकान्त प्रभाव को लिए हुई थी। भाषा

में मुहावरों के प्रयोगों की प्रचुरता हेनो पर भी सहजता का पूर्ण प्रभाव है। यत्र–तत्र फारसी भाषा सा वाक्य विन्यास भी देखने को मिलता है। रानी केतकी की कहानी की भाषा आदर्श रूप प्रस्तुत करने में सक्षम सिद्ध हुई। इन आरम्भिक चारों आचार्यों ने आधुनिक हिन्दी गद्य का द्वार खोला। इनके बाद भारतन्दु युग का श्री गणेश हुआ, जिसमें हिन्दी गद्य के क्षेत्र में विविध मान प्रतिष्ठापित हुए।

भारतेन्दु युग

भारतेन्दु युग का उन्नीसवीं शताब्दी का अन्तिम चरण रहा है। भारतेन्दु जी के समय हिन्दी गद्य की प्रमुखतः दो शैलियाँ प्रचलित थीं। एक ऐसी शैली कि जिसमें अरबी–फारसी शब्दों की प्रचुरता थी। इस शैली के प्रवर्तक राजा शिव प्रसाद थे। राजा शिवप्रसाद शिक्षा विभाग में इन्सपेक्टर थे। यह गद्य की भाषा सामान्यजन की बोलचाल की भाषा को अपनाने के पक्ष में थे जबकि दूसरी शैली जो कि विशुद्ध हिन्दी को स्वीकारने के पक्ष में थी, जिसके समर्थक राजा लक्ष्मणसिंह थे। शिवप्रसाद ने भाषा में उर्दू को विशेष स्थान देने का पक्ष प्रस्तुत किया। इस धारा का विरोध करते हुए राजा लक्ष्मणसिंह ने कहा – 'उर्दू के दलदल में बिना फंसे हुए भी हिन्दी सुन्दर गद्य में लिखी जा सकती है। डॉ. भगवत मिश्र ने इस संदर्भ में स्पष्ट किया – 'राजा लक्ष्मणसिंह ने अपने दो अनुवादों में इस कथक की सत्यता सिद्ध करके दिखा दी । इनके ये दोनों ग्रन्थ शुद्ध हिन्दी में लिखे हुए हैं। इनकी भाषा ललित और सरल है और यथासाध्य इसमें अरबी फारसी के शब्द भी नहीं आने पाये हैं। भाषा के सम्बन्ध में राजा लक्ष्मणसिंह ने लोगों की आँखें खोल दीं। भाषा के एक निश्चयात्मक रूप का जितना सम्यक प्रसार तथा जितनी पुष्ट और व्यवस्थित गद्य का रूप हमें इनकी रचना में मिलता है, उतनी इससे पहले किसी रचना में नहीं मिलता है क्योंकि इस समय तक न तो भाषा का ही परिमार्जन हो पाया था और न कोई निश्चित शैली ही बन पाई थी।

इन दो शैलियों के कारण लेखक–समुदाय दो वर्गों में विभक्त हो गया। बाबू भारतेन्दु इस स्थिति में दोनों शैलियों में सामंजस्य स्थापित कर भाषा का एक नवीन स्वरूप स्थापित करना चाहते थे। एक ऐसी भाषा जो सभी वर्गों के लेखकों के लिए सरल, सहज एवं सुविधाजनक हो। भारतेन्दु ने अपनी कृतियों में से ऐसी शैली को जन्म दिया जो व्यावहारिक एवं सरल रूप में प्रस्तुत हुई। इनकी भाषा के संदर्भ में डॉ. मिश्र ने लिखा है कि – 'बाबू साहब ने अपनी गद्य में उर्दू के तत्सम शब्दों के स्थान पर ऐसे अरबी–फारसी के शब्दों का प्रयोग किया है, जो विकृत रूप में पाये जाते हैं – जैसे कफन, जाफत, खजाना और जो बहुत ही चलते ढंग के हैं – जैसे जंगली, मुर्दा आदि। इसी प्रकार इन्होंने संस्कृत शब्दों के उन्हीं तत्सम रूपों का प्रयोग बड़े सुन्दर ढंग से किया

है, जिनका आज भी प्रयोग प्रतिदिन की बोलचाल की भाषा में होता है। उनके व्यावहारिक रूपों का उन्होने ऐसा ध्यान रखा है कि न तो वे भद्दे लगते हैं और न प्रयोग में किसी प्रकार की अड़चन ही उपस्थित करते हैं. हिया, गुनी, लच्छन, ज्योतिषी, आँचल, जीवन अगनित आदि ऐसे शब्द हैं, जिनके उपयोग से भाषा व्यावहारिक और मधुर हो गई है।

भारतेन्दु ने खड़ी बोली गद्य को अनिश्चितता की स्थिति से निकालकर सार्वजनिक, सर्वग्राह्य बोली में प्रस्तुत करने का सफल अनुसंधान किया। हिन्दी गद्य में प्रचलित शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों और व्यंग्य – हास के समावेश से उसे चित्ताकर्षक बना दिया, जिससे खड़ी बोली का व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ। बाबूजी ने यह सिद्ध कर दिया कि यह बोली हर तरह से साहित्यिक अभिव्यक्ति के योग्य है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में विविध विधाओं का श्री गणेश होना भी इसी युग की देन है। इस युग में निबन्ध प्रबन्ध, व्यंग्य लेख, नाटक, प्रहसन, यात्रा समीक्षा पत्र एवं भूमिका आदि का सृजन आरम्भ हुआ। लेखक समुदाय का दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ। गम्भीर विषयों के साथ हास्य–विनोद का साहित्य भी लिखा जाने लगा। इस प्रकार मनोरंजन–साहित्य का शुभारम्भ जन–साधारण का मन हिन्दी के प्रति आकर्षित करने लगा, तो कभी सहज गति से व्यावहारिक भाषा का प्रयोग करते। सहज भाषा के स्वरूप का उदाहरण है – पर मेरे प्रीतम अब तक न घर आये। क्या उस देश में बरसात नहीं होती या किसी सौत के फन्दे में पड़ गये कि इधर की सुधि ही भूल गए। कहाँ वह प्यार की बातें कहाँ एका एक ऐसा भूल जाना कि चिट्ठी भी न भिजवाना। कहीं लम्बे–लम्बे वाक्यों का प्रयोग तो कहीं छोटे–छोटे वाक्यों का प्रयोग कर भाषा का चमत्कृत बनाया गया है जैसे – 'सब विदेशी लोग घर फिर आ गए और व्यापारियों ने नौका लादना छोड़ दिया। पूल टूट गये। बांध खुल गये। पंक से पृथ्वी भग गई।' इस प्रकार विविध शैलियों के जन्मदाता भारतेन्दु ने हिन्दी गद्य क्षेत्र में समृद्ध करते हुए साहित्य में प्रतिष्ठापित किया।

भारतेन्दु युग में अनुवाद, नाटक, समालोचन, कथा–साहित्य तथा पत्रिका आदि विधाओं में साहित्य लिखा जाने लगा। भारतेन्दु के समय लेखकों की एक मित्र–मण्डली बन गई थी, जो भारतेन्दु मण्डल के नाम से जानी जाती थी। इस मण्डली के लेखकों ने हिन्दी में गद्य – साहित्य का सृजन आरम्भ किया था।इन लेखकों में पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. प्रतापनारायण मिश्र, लालाश्री निवासदास, पं. बद्रीनारायण चौधरी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी गद्य लेखक किसी न किसी पत्र–पत्रिका के सम्पादकीय विभाग में सेवारत थे तथा उन्हीं पात्रों में अपने लेखादि प्रकाशित कराया करते थे। बाबू भारतेन्दु ने जिस गद्य–शैली को जन्म दिया उसे इस मित्र मण्डली ने परिष्कृत और स्वभाविक

रूप में प्रस्तुत कर लोकप्रिय बनाने में अपूर्व सहयोग दिया। इन सभी लेखकों की शैली में अपनापन तथा विशेषता थी। मिश्र जी की भाषा में ग्रामीण तथा आंचलिकता का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है जबकि भट्ट जी की भाषा में प्रौढ़ता तथा परिपक्वता झलकती है। डॉ. श्यामसुन्दर दास ने भारतेन्दु युगीन भाषा के परिष्कृत स्वरूप का श्रेय बाबूजी को देते हुए लिखा है – यद्यापि भारतेन्दु जी की साहित्यिक सेवा अमूल्य थी, पर उसका महत्व उसके कारण इतना नहीं है। जितना हिन्दी भाषा को संजीवनी शक्ति देकर उसे देशकाल के अनुकूल सामर्थ्ययुक्त बनाने और देश हितैषिता के भावों को अपने देशवासियों के हृदय में उत्पन्न करने में था। लल्लूलाल जिस भाषा को नया रूप दिया, लक्ष्मणसिंह ने जिसे सुधारा ,उसको परिमार्जित और सुन्दर ढाँचे में ढालने का श्रेय भारतेन्दु जी को प्राप्त है।

इसी युग में समाचार–पत्र पत्रिकाओं का भी प्रकाशन आरम्भ हुआ। 'कवि' – 'वचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगाजीन', 'बाल–बोधिनी' आदि का प्रकाशन हुआ। इस पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी में समाचार तथा साहित्यिक सामग्री प्रस्तुत की जाने लगी। साहित्यकारों की रचनाओं के प्रकाशन से स्फूर्त प्रेरणा जन्म लेने लगी तथा समालोचना तथा स्वर सामने आया। पूर्ववर्ती कवियों की रचना की समीक्षा भी की जाने लगी। गुणदोष के आधार पर आलोचना की शैली का जन्म हुआ। पं. बदरीनारायण चौधरी ने 'आनन्द कादम्बरी' शीर्षक से समालोचनात्मक कृति प्रकाशित की।

इस प्रकार हिन्दी गद्य जो साहित्य जगत में स्थान नहीं बना पा रहा था – भारतेन्दु व उसकी साहित्यिक मण्डली के प्रयोसों के फलस्वरूप अनेक विधाओ के साथ प्रतिष्ठापित हुआ।[3]

जिस गद्य–साहित्य की नींव ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी में पड़ी थी उनका निश्चित रूप से विकास ईसा की बीसवीं शताब्दी में हुआ। नागरी प्रचारिणी पत्रिका और सरस्वती के माध्यम द्वारा खड़ी बोली के साहित्यिक रूप का अधिकाधिक प्राचार हुआ। इस समय गद्य में विषय विस्तार पहले से भी अधिक हुआ और कवित्वपूर्ण व्यक्तित्व–प्रधान भाषण सम्भाषण, व्यंग्यपूर्ण तर्कपूर्ण, भावपूर्ण, कथात्मक वर्णनात्मक, विचारात्मक आदि अनेक शैलियों के प्रचार से उसकी श्री वृद्धि हुई। बंगला, मराठी उर्दू, संस्कृत, अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्दों के प्रयोग से उसकी अभिव्यंजना शक्ति बढ़ी। साथ ही उसके वाक्यविन्यास पर अग्रेजी वाक्य–विन्यास का प्रभाव पड़े बिना न रह सका। महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, बालमुकुन्द गुप्त, श्यामसुन्दर दास, पद्मसिंह शर्मा, अध्यापक पूर्णसिंह प्रेमचन्द 'प्रसाद' चण्डी प्रसाद हृदयेश, केशवप्रसाद सिंह, माधव मिश्र, गुलेरी आदि लेखक इस काल के प्रसिद्ध शैलीकार हैं। पिछले दो महायुद्धों के फलस्वरूप गद्य

में अनेक विविध प्रकार की रचनाएँ उपलब्ध होने लगी हैं।

वर्तमान समय में हिन्दी साहित्य में गद्य की प्रधानता है। जिसका तात्पर्य यह है कि हिन्दी जीवन पूर्णरूप से आधुनिक जीवन की परिधि में आ गया है। आधुनिक जीवन जटिल और दुरूह हो गया है कि उसके लिए अब काव्य उपयुक्त माध्यम नहीं रह गया। जीवन की अनेकानेक विषम समस्याएँ आज गद्य–खड़ी बोली गद्य के माध्यम द्वारा ही सुझाई जा रही है।[4]

(क) साहित्य की परिभाषा, स्वरूप एवं अंग

साहित्य हमारे सांस्कृतिक जीवन की रक्षा का एक साधन है। उसी के द्वारा युग–प्रवृत्तियों की माँग और उनकी पूर्ति की सर्वांगीण रक्षा होती है। साहित्य ही वर्तमान और अतीत के सम्बन्ध की आवश्यक कड़ी है और भविष्य के रूप को चित्रित करने का महत्वपूर्ण उपकरण है। साहित्य का विकास जीवन की विकासिता का चिह्न है और उसकी विविधरूपता जीवन की अनेक रूपता का प्रमाण है।

साहित्य का स्वरूप – संस्कृत में 'साहित्य' शब्द का प्रयोग व्यापक तथा संकीर्ण दोनों में हुआ है। व्यापक अर्थ में यह 'भाषा' अथवा 'वाङमय' शब्द का पर्यायवाची और संकीर्ण अर्थ में वर्तमान 'काव्य' शब्द का समानार्थी प्रयुक्त हुआ है। इसी भाँति 'काव्य' शब्द भी व्यापक तथा संकीर्ण दोनों अर्थो में प्रयुक्त हुआ मिलता है। प्राचीन काल में जबकि साहित्य के सब अंगों प्रार्दुभाव नहीं हुआ था तथा स्वानुभूति की अभिव्यक्ति का एकमात्र साधन 'काव्य' था। 'साहित्य' तथा 'काव्य' शब्दों का प्रयोग एक अर्थ में हो जाता था। वेदों में कवि शब्द का पयोग जगदीश्वर के लिए तथा श्रीमद्भागवत में आदिकवि का प्रयोग वेदों के सर्वप्रथम प्रकाशक तथा विद्वान के ब्रह्मा के लिए हुआ है। अतः इन शब्दों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में कविता का अर्थ बाङमय का ऐसा रूप लिया गया जिसेक अन्तर्गत सब प्रकार की ज्ञान राशि का समाहार होता था।[5]

साहित्य की परिभाषा की टीका व्याख्या अथवा पुनरावृत्ति मात्र है। उनसे रचना का कोई एक निश्चित रूप प्रतिपादित नहीं होता।

अ) ज्ञान–राशि के संचित कोश ही का नाम साहित्य है। (महावीर प्रसाद द्विवेदी) (साहित्य की महत्ता) निबन्ध से

आ) बोलचाल की भाषा में हम किसी भी छपी हुई पुस्तक को साहित्य की संज्ञा देते हैं। यहाँ तक कि दवाइयों के साथ आने वाले छपे हुए पर्चे भी साहित्य कहलाते हैं। किन्तु दूसरे और अधिक उपयुक्त अर्थ में साहित्य से उन्हीं पुस्तकों का बोध होता है जिनमें कला का समावेश है। (श्यामसुन्दर दास)

C) Literature is concerned solely with the subjective outlook up on the world ...... It is the record of the impressions made by external realities of every king upon great men, and of the reflections which these men have made upon them. (Judgement in literature by W.Basil Worsfold)

ई) 'विचार' और 'कल्पना' भाषा द्वारा प्रकट किए जाते हैं। यही साहित्य है। पदार्थ साहित्य नहीं, पदार्थों का शब्द रूपी संकेत भी साहित्य और केवल शब्द भी साहित्य नहीं– विचार का नाम साहित्य है। ये विचार भाषा द्वारा प्रकट किए जाते हैं। और विचारों से तात्पर्य कल्पना अनुभव विवेचना तथा अन्यान्य मन की क्रियाओं से है।[6] (प. रामचन्द्र शुक्ल)

अ) साहित्य के अंग – प्राचीनकाल में रचना के साधन बहुत कम थे उस समय मुद्रण यन्त्र का आविष्कार न हुआ था। ज्ञान के स्मृति पटल पर अधिक समय तक सुरक्षित रखने के लिए तब कविता से भिन्न बाङ्मय का कोई अन्य रूप उपयुक्त न समझा जाता था। अत एव पौराणिक काल तक का सारा भारतीय वाङ्मय पद्य रूप में अधिक मिलता है। जब काव्य से भिन्न नवीन रचनाओं का निर्माण प्रचुर मात्रा में होना आरम्भ हुआ तो विविध प्रकार की रचनाओं का एक नाम काव्य रखना असंगत हो गया सम्भवतः यही कारण है कि पौराणिक काल का आरम्भ होते–होते 'साहित्य' का वर्गीकरण भिन्न–भिन्न श्रेणियों में किया जाने लगा। फिर तो काव्य (साहित्य) को गद्य और पद्य (छन्दबद्ध दो भागों में विभाजित किया फिर कथा, आख्यायिका तथा उत्पाद्य, अनुपाद्य आदि अनेक भेदों का उल्लेख किया। हेमचन्द्र ने पहले प्रेक्ष्य (दृश्य) और शृव्य नाम से साहित्य के दो भेद किए फिर पाठ्य, गेय महाकाव्य आख्यायिका, चम्पू तथा अनिवद्ध आदि उपभेद किए। 'साहित्य–दर्पण' कार विश्वनाथ ने अपने ग्रंथ के छठे परिच्छेद में साहित्य के अंगों का श्रेणी विभाजन विस्तार–पूर्वक किया है। उन्होंने पहले दृश्य तथा श्रव्य नाम से 'साहित्य' के दो भेद किये फिर दृश्य के अन्तर्गत रूपक, उपरूपक और श्रव्य के अन्तर्गत पद्य गद्य की श्रेणियाँ निर्धारित कीं।[7]

साहित्य में गद्य का स्वरूप भारतीय परम्परानुसार साहित्य के दो प्रधान भेद माने जाते हैं – दृश्य काव्य तथा श्रव्य–काव्य। दृष्य–काव्य के लिए नाटक शब्द का व्यवहार आजकल होता है। नाटक अभिनय के लिए लिखा जाता है औ र श्रव्य–काव्य सुनने अथवा पढ़ने के लिए। नाटक को रंगमंच पर खेला जाता देखकर आनन्द की उपलब्धि होती है और श्रव्य–काव्य को सुनकर अथवा पढ़कर। श्रव्य काव्य का विभाजन पद्य, गद्य तथा चम्पू में किया जाता है। छन्दोबद्ध रचना पद्य कहलाती है, छंदादि के बन्धन से रहित रचना गद्य और गद्य–पद्य मिश्रित चम्पू बन्ध के आधार पर पद्य के प्रबन्ध–काव्य और मुक्तक के रूप में दो भेद किये जाते हैं। प्रबन्ध–काव्य में पूर्वापर–क्रम और

तारतम्य रहता है, मुक्तक इससे मुक्त होता है। एकार्थकाव्य महाकाव्य की शैली पर ही लिखा जाता है किन्तु उसमें महाकाव्य की गरिमा और विविधता नहीं होती। खण्डकाव्य जीवन के खण्डचित्र को लेकर चलता है। चम्पू के भेद नहीं किए जाते। गद्य के अन्तर्गत उपन्यास, कहानी, संस्मरण रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा, पत्र, रिपोर्ताज, यात्रा, गद्य काव्य, निबन्ध और समालोचना आदि आते हैं।[8]

हिन्दी गद्य साहित्य की विविध विधाएँ

उपन्यास – साहित्य मानव–जीवन का अभिन्न अंग है। साहित्य मानव जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है जितना भोजन, वस्त्र आदि आवश्यक वस्तुएँ। साहित्य का विस्तार असीम है, उसे सुविधा की दृष्टि से कई महत्वपूर्ण विधाओं में विभाजित किया गया है। उपन्यास उन्हीं विधाओं में से एक है।

साहित्य में उपन्यास की महत्ता बहुत प्राचीनकाल से चली आ रही है किन्तु हिन्दी साहित्य में यह आधुनिक काल की उपज है। उपन्यास शब्द की आधुनिक व्याख्या प्राचीनकाल की व्याख्या से भिन्न है। यह शब्द भिन्न–भिन्न भाषाओं में भिन्न–भिन्न रूपों में प्रयुक्त होता था, किन्तु आज हिन्दी–साहित्य में कथा–साहित्य के लिए रूढ़ हो गया है। अंग्रेजी में इसे 'नॉवेल', बंगला में 'उपन्यास', मराठी में 'कादम्बरी' तथा गुजराती में 'नवलकथा' नाम से अभिहित किया जाता है। संस्कृत में 'अमरकोश' में उपन्यास के लिए 'उपन्यासस्तु वाङ्मुखम्' कहा गया जिसका अर्थ है – किसी बात को कहने का उपक्रम बनाना। संस्कृत में उपन्यास की व्याख्या दो अर्थों में की गई है – एक के लिए 'उपन्यास प्रसादनम्' कहा गया है, जिसका अर्थ प्रसन्न करना, आनन्द देना होता है। दूसरे के लिए उत्पत्तिकृतोहर्थः का प्रयोग हुआ है। इसका तात्पर्य किसी भी विषय को युक्ति युक्त ढंग से प्रस्तुत करना है।[9]

हिन्दी–साहित्य में उपन्यास की क्षीण धारा झिलमिलाते दीपक की लौ कीतरह प्राचीनकाल से ही चली आ रही है, किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में वह लौ विकसित होने लगी। आज उसका प्रकाश पूरे हिन्दी साहित्य को दीप्ती कर रहा है।[10]

उपन्यास की परिभाषा – उपन्यासकार प्रेमचन्द ने उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार दी है – "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र समझता हूँ मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"

प्रसिद्ध आलोचक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने उपन्यास को एक ऐसी काल्पनिक कृति माना है जो गद्य के माध्यम से आख्यान विशेष की सहायता लेकर सामाजिक जीवन के किसी स्वरूप का यथार्थ आभास देती हुई जीवन की मार्मिक व्याख्या करती है।

बाबू गुलाबराय ने उपन्यास को कार्य–कारण श्रृंखला में बँधा हुआ एक गद्य कथानक

माना है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्‌घाटन किया जाता है।[11]

लार्ड डेविड सेसिल ने उपन्यास को एक ऐसी कलाकृति माना है जो हमको जीवित जगत से परिचित कराती है और कुछ अर्थों में उस जगत से सादृश्य रखती हैं जिसमें हम रहते हैं।

A novel is a work of art in so far as it introduces us into a living world in some respects resembling the world we live in but with an individuality of its own. (Lord D. cecil : Hardy the Novelist)

हरबर्ट जे मूलर ने उपन्यास की व्याख्या करते हुए लिखा है कि उपन्यास मूलतः मानवीय अनुभव का निरूपण है, चाहे वह यथार्थ का हो या आदर्श का और इस प्रकार उसमें अनिवार्य रूप से जीवन की आलोचना रहती है।

A novel is typically a representation of human experience whether liveral or ideal and therefore inevitably a comment upon life. (Herbert I. Mulleri : Modern fiction A study of values foreward)[12]

अंततः यह निष्कर्ष निकलता है कि उपन्यासकार उपन्यास में कल्पना के माध्यम से मानव-जीवन और मानवीय परिस्थितियों का ऐसा सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है जैसे वह स्वयं का अनुभूत हो या स्वयं के आसपास ही घटित हुआ हो।

प्रथम उपन्यास एवं उपन्यासकार – हिन्दी के प्रथम उपन्यास एवं उपन्यासकार के सम्बन्ध में विवाद है। अधिकांश विद्वान लालाश्री निवासदास के 'परीक्षागुरु' (1882 ई.) को हिन्दी प्रथम उपन्यास मानते हैं। कतिपय विद्वान श्रद्धाराम फिल्लौरी कृत 'भाग्यवती' (1877) को प्रथम उपन्यास की मान्यता देते हैं। डॉ. श्रीधर मिश्र पं. गौरीदत्त लिखित 'देवरानी जेठानी की कहानी' (सन् 1870) को प्रथम उपन्यास मानते हैं।

विकास क्रम : उपन्यास साहित्य का सम्यक अध्ययन करने के लिए उसे चार युगों में रखा जा सकता है-

1. प्राक् प्रेमचंद युग
2. प्रेमचंद – युग
3. प्रेमचंदोत्तर – युग
4. स्वातंत्र्योत्तर – युग

प्राक् प्रेमचन्द युग (सन् 1870 से 1918 ई.) :

परिस्थितियाँ : इस युग में राजनीतिक दृष्टि से भारत पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो चुका

था। अंग्रेजों की नीति के कारण भारत की आर्थिक स्थिति जर्जर हो गई थी भारतीय समाज घोर परम्परावादी रूढ़िवादी मान्यताओं एवं अन्धविश्वासों में जकड़ा हुआ था। ऐसी परिस्थितियों में राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती आदि महापुरुषों में उद्बोधन, पाश्चात्य संस्कृति, शिक्षा एवं विचारधारा के प्रभाव से भारतीय जनता में नवीन विचारों के प्रति जिज्ञासा एवं आकर्षक की भावना पनपने लगी।

यह युग सही अर्थों में पुनर्जागरण और नवजागरण का युग था। नवीन भावनाओं एवं नवीन विचारों के साथ-साथ खड़ी बोली भी अपना नया स्वरूप धारण कर रही थी। उपन्यास विधा के प्रचार-प्रसार के साथ हिन्दी का भी प्रचार-प्रसार होने लगा। इस युग में सामाजिक कुरीतियों को उजागर करते हुए समाज-सुधार की भावना से उपन्यास लेखक का कार्य प्रारम्भ हुआ। इस धारा के समानान्तर ही रोमांचक तिलस्म व जासूसी प्रवृत्ति भी विकसित हुई। इस युग में 'उपन्यास' (किशोरीलाल गोस्वामी), 'उपन्यास लहरी' व 'उपन्यास बहार' काशी (जयरामदास गुप्त), 'उपन्यास सागर' कलकत्ता (रामलाल वर्मा), 'जासूस' (गोपालराम गहमरी) आदि प्रमुख पत्रिकाएँ थीं। इन पत्रिकाओं में उपन्यास अंकों में छपा करते थे।

प्रमुख उपन्यासकार

सामाजिक उपन्यास : इस युग के उपन्यासकारों ने धार्मिक, आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत शराबखोरी, दहेज, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, अनमेल विवाह, दुराचार तथा चाटुकारिता को उपन्यास का विषय बनाया है। प्रारंभिक उपन्यासकारों में पंत गौरीदत्त (देवरानी जेठानी की कहानी श्रद्धाराम फिल्लौरी (भाग्यवती), लाला श्रीनिवासदास (परीक्षा गुरु) तथा भारतेन्दु हरिशचन्द्र (पूर्ण प्रकाशचन्द्र प्रभा) प्रमुख हैं। अन्य उपन्यासकारों में प्रमुख हैं –

बालकृष्ण भट्ट ने शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यासों की रचना की है। उनका 'नूतन ब्रह्मचारी' उपन्यास बालकों के लिए सौ आजान एक सुजान' उपन्यास युवकों के लिए उद्देश्यपूर्ण लेखन की दिशा में इनका योगदान है।

किशोरीलाल गोस्वामी जी ने अनेक सामाजिक, ऐतिहासिक वा जासूसी उपन्यास लिखे हैं। 'त्रिवेणी वा सौभाग्यश्रेणी', 'लीलावती वा आदर्शसती', 'चपला का नव्य समाज', 'पूर्वजन्म वा सौतिया डाह', 'मालती माधव का मदन मोहिनी', 'अंगूठी का नगीना' आदि उनके प्रमुख सामाजिक उपन्यास हैं।

लज्जाराम शर्मा ने भी उद्देश्यपूर्ण सामाजिक उपन्यासों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के महत्व को स्थापित किया है। 'धूर्त रसिकलाल', 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी', 'आदर्श दम्पति', 'सुशीला विधवा', 'आदर्श हिन्दू', 'विपत्ति की कसौटी' आदि उनके

प्रमुख सामाजिक उपन्यास हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास : इस युग के ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने ऐतिहासिक तथ्यों की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया है। उपन्यासकारों का मुख्य उद्देश्य पाठकों को अतीतकालीन गौरव से परिचित कराते हुए उनका मनोरंजन करना था। प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकारों का परिचय इस प्रकार है –

किशोरीलाल गोस्वामी हिन्दी के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। इनका प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'हृदय हारिणी वा आदर्श रमणी' 1904 में पुस्तक–रूप में प्रकाशित हुआ था। इनके अन्य उपन्यास हैं – 'लवंगलता वा आदर्श बाला', 'गुलबहार वा आदर्श भ्रातृस्नेह', 'तारा वा क्षात्र–कुल कमलिनी', 'सुलताना रजिया बेगम वा रंगमहन में हलाहला', 'मल्लिका देवी का बंग सरोजिनी', 'लखनऊ की कब्र वा शाही महलसरा', 'सोना और सुगंध वा पन्नाबाई', 'लाल कुंवर वा शाही रंगमहल' आदि।

अन्य उपन्यासकारों में ब्रजनन्दन सहाय ने 'विस्मृत सम्राट' तथा लालचीन उपन्यासों की रचना की। 'अनारकली', 'पृथ्वीराज चौहान' एवं 'पानीपत बलदेव प्रसाद मिश्र' के उपन्यास हैं। मिश्र बन्धुओं द्वारा लिखित उपन्यास हैं – 'उदयन', 'चन्द्रगुप्त मौर्य', 'पुष्यमित्र', 'विक्रमादित्य', 'चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य', 'वीरमणि' तथा 'स्वतंत्र भारत'।

तिलिस्मी – ऐयारी उपन्यास – देवकीनंदन खत्री जी ने तिलिस्मी–ऐयारी उपन्यासों के द्वारा पाठकों का मनोरंजन किया तथा लोकप्रियता प्राप्त की। 'चन्द्रकांता' के चार भाग तथा 'चन्द्रकांता संतति' के चौबीस भाग हैं। 'भूतनाथ' के केवल छह भाग ही लिख पाये शेष इक्कीस भाग उनके पुत्र दुर्गा प्रसाद खत्री ने पूरे किए। खत्री जी के अन्य तिलस्मी उपन्यासों ने 'नरेन्द्र मोहिनी', 'वीरेन्द्रवीर', 'कुसुम कुमारी', 'काजर की कोठरी' आदि प्रमुख हैं।

किशोरी लाल गोस्वामी के 'याकूती तख्ती या यमज सहोदरा', 'जिंदे की लाश' आदि प्रसिद्ध तिलिस्मी उपन्यास हैं। हरे कृष्ण जौहर ने भी तिलिस्मी उपन्यासों की रचना की है।

जासूसी उपन्यास गोपालराम गहमरी ने प्रमुख रूप से जासूसी उपन्यास ही लिखे हैं। उनके उपन्यास 'जासूस' नामक पत्रिका में प्रकाशित होते थे। 'अद्भुत लाश', 'गुप्तचर', 'सरकटी लाश', 'अद्भुत खून', 'भयंकर चोरी' आदि उनके प्रसिद्ध जासूसी उपन्यास हैं।

इनके अतिरिक्त हरेकृष्ण जौहर, दुर्गाप्रसाद खत्री, जयरामदास गुप्त आदि ने भी जासूसी उपन्यास लिखे हैं।

इस युग में प्रमुख रूप से बंगला, उर्दू तथा अंग्रेजी उपन्यासों के अनुवाद हुए। गदाधर सिंह, राधाचरण गोस्वामी, रामकृष्ण वर्मा, गंगाप्रसाद गुप्त तथा जनार्दन प्रसाद झा

'द्विज' ने इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया है। भारतेन्दु का उपन्यास 'पूर्णप्रकाश चन्द्रप्रभा' भी मराठी उपन्यास का अनुवाद है।

इस युग के अन्य उपन्यासकारों में मन्नन द्विवेदी, राधाचरण गोस्वामी गंगा प्रसाद गुप्त, मथुराप्रसाद शर्मा, रूपनारायण पाण्डेय आदि प्रमुख हैं।

सीमाएँ : युगीन परिस्थितियों के कारण इस युग के सामाजिक उपन्यासों में उपदेशात्मकता तथा ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पनाशीलता का प्राधान्य था। तिलिस्मी-जासूसी उपन्यास रोमांचक एवं असंभाव्य होने के कारण जीवन से कटे हुए से जान पड़ते हैं। भाषा भी धीरे-धीरे विकसित हो रही थी। शैलियों के अन्तर्गत वर्णनात्मक शैली ही प्रमुख थी।

प्रेमचन्द-युग (सन् 1918 से 1936 ई.)

परिस्थितियाँ : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ ही भारत का प्रत्येक नागरिक वैचारिक रूप से स्वतंत्रता से जुड़ गया था। अंग्रेजों के अत्याचार, के कारण भारत का लघु उद्योग पूरी तरह नष्ट हो चुका था। आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक सभी दृष्टि से भारत की स्थिति अत्यन्त ही दयनीय एवं शोचनीय थी। इन विषय परिस्थितियों में उपन्यासकारों का रोमांचक एवं जासूसी उपन्यास लिखना प्रेमचंद को नहीं भाया और उन्होंने इस क्षेत्र में उद्देश्यपूर्ण लेखन की मशाल उठाई। प्रेमचंद ने सुसंस्कृत एवं बुद्धिजीवी भारतीयों के मन में उपन्यास के प्रति तिरस्कार की जो भावना थी, उसे दूर कर उपन्यास को सम्मानपूर्ण स्थान दिलाया। इसी कारण प्रेमचंद मात्र युग-प्रवर्तक ही नहीं वरन् युग-द्रष्टा भी माने जाते हैं।

प्रमुख उपन्यासकार

सामाजिक उपन्यास : इस युग में सामाजिक प्रवृत्ति के अग्रदूत प्रेमचन्द हैं। समाज के विविध पक्षों से जुड़ी समस्याओं से वे भलीभाँति परिचित थे तथा समस्याओं के दुष्परिणामों को उन्होंने अत्यन्त ही गहराई से अनुभव किया था ''चारों ओर फैले हुए जीवन और अनेक सामयिक समस्याओं – पराधीनता, जमींदारों, पूँजीपतियों और सरकारी कर्मचारियों द्वारा किसानों का शोषण, निर्धनता, अशिक्षा, अंधविश्वास, दहेज की कुप्रथा, घर और समाज में नारी की स्थिति, वेश्याओं की जिन्दगी, वृद्ध विवाह, विधवा-समस्या, साम्प्रदायिक वैमनस्य, अस्पृश्यता, मध्यम वर्ग की कुंठाएं आदि ने उन्हें उपन्यास लेखन के लिए प्रेरित किया था।''

प्रेमचन्द सन् 1905 से ही उर्दू-लेखन में प्रवृत्त थे। 'प्रेमा अर्थात् दो सखियों का विवाह, 'रूठी रानी' तथा 'वरदान' उनके उर्दू उपन्यासों के हिन्दी रूपांतर हैं। 'सेवासदन' (1918) भी 'बाजारे-हुस्न' (उर्दू उपन्यास का अनुवाद है पर इसी उपन्यास से प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास जगत में लोकप्रियता प्राप्त की, इस कारण इसका महत्व है। उनके

अन्य उपन्यास हैं – 'प्रेमाश्रय', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'गबन', 'कर्मभूमि', 'गोदान' और 'मंगलमूत्र' (अपूर्ण) 'प्रतिज्ञा' पूर्व रूपांतरित प्रेम अर्थात् दो सखियों का विवाह है। इसमें विधवा–विवाह की समस्या चित्रित है। 'निर्मला'उपन्यास में दहेज, अनमोल विवाह की समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। ''गोदान'' प्रेमचंद का सर्वोत्कृष्ट उपन्यास है। इसमें ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों की समस्याओं का यथार्थपरक अंकन हुआ है। 'मंगलसूत्र' (अपूर्ण) उपन्यास में वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के प्रति असंतोष व्यक्त किया है।

अन्य सामाजिक उपन्यासकारों में प्रसाद प्रमुख हैं। इन्होंने 'कंकाल' व 'तितली' उपन्यासों की रचना की है। भगवती प्रसाद वाजपेयी ने विशेष रूप से मध्यवर्गीय जीवन को चित्रित किया है। उनके उपन्यास हैं – 'प्रेमपथ', 'अनाथ पत्नी', 'त्यागमयी', 'मुसकान', 'प्रमानिर्वाह' 'लालिमा' आदि। 'अप्सरा', अलका', तथा 'निरुपमा' उपन्यासों के माध्यम से महाप्राण निराला ने जीवन के यथार्थ का चित्रण किया है। 'लगन', 'संगम', 'प्रेम की भेंट', 'प्रत्यागत' तथा 'कुण्डली चक्र' वृन्दावनलाल वर्मा के सामाजिक उपन्यास हैं। प्रतापनारायण श्रीवास्तव के निकुँज और विदा सियारामशरण गुप्त के गोद तथा अन्तिम आकांक्षा, विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' के 'माँ' एवं 'भिखारिणी' तथा उषा देवी मित्रा वचन का मोल इस युग के प्रमुख सामाजिक उपन्यास हैं।

एतिहासिक उपन्यास : इतिहास के तथ्यों और कल्पना के सुन्दर तथा सार्थक सामंजस्य द्वारा ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना का श्रेय वृन्दावनलाल वर्मा को ही जाता है। इनके उपन्यासों को पढ़कर ऐसा लगता है मानो बुन्देलखंड का पत्थर–पत्थर बोल उठा है। उन्होंने अपने उपन्यासों द्वारा बुंदेलखंड की पवित्र और वीरभूमि को जन विख्यात बना दिया है। उनके द्वारा इस युग में लिखित ऐतिहासिक उपन्यास 'गढ़ कुण्डार' एवं 'विराटा की पद्मिनी' हैं।

इनके अतिरिक्त गोविन्द वल्लभ पंत (सूर्यास्त); विश्वम्भरनाथ जिज्ञा (तुर्करमणी), आचार्य चतुरसेन शास्त्री (खवास का ब्याह), निराला (प्रभावती), भगवती चरण वर्मा (पतन) आदि ने भी ऐतिहासिक प्रवृत्ति के विकास में सहयोग दिया है।

सीमाएँ : इस युग में सामाजिक उपन्यास ही अधिक लिखे गये ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना भी हुई पर तुलनात्मक रूप से कम। सामाजिक उपन्यासों की एकधारा आदर्शोन्मुखी, यथार्थवादी की है और दूसरी प्रकृतिवादी को स्पर्श करती है।

प्रेमचंदोत्तर युग (सन् 1936 से 1947 ई.)

परिस्थितियाँ : सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई तथा इसी वर्ष जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में काँग्रेस का अधिवेशन हुआ।

सन् 1936 में द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो जाने से अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हलचल मच गयी। ब्रिटिश शासन के आधीन होने के कारण अप्रत्यक्षतः भारत को भी इस युद्ध में सम्मिलित होना पड़ा। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के इच्छुक भारतीयों का जब धैर्य समाप्त होने लगा तब गाँधीजी ने 'करो या मरो' का नारा देकर स्वातन्त्र्य आन्दोलन को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। सन् 1943 के विनाशकारी भीषण दुर्भिक्ष से लाखों मनुष्य अकाल मृत्यु के शिकार हुए। इसके बाद की महामारियों से तो गाँव के गाँव श्मशान में परिवर्तित हो गए। अचानक ही जापान के हिरोशिमा एवं नागासाकी पर परमाणु बन गिराए जाने की घटना ने समूचे विश्व को हिला दिया।

15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र तो हो गया परन्तु विभाजन का दर्द लेकर। इस विभाजन की आड़ में हिंसा की वीभत्स होली खेली गयी। शरणार्थी समस्या के साथ-साथ स्वतंत्र भारत के समक्ष अनेक समस्याएँ आईं।

इन परिस्थितियों ने तो साहित्यकारों को प्रभावित किया ही, पश्चिम की व्यक्तिवादी, मार्क्सवादी एवं मनोवैज्ञानिक विचारधाराओं ने भी चिंतन को प्रभावित किया। उपन्यासकारों ने स युग की परिस्थितियों की यथार्थ परक अभिव्यक्ति उपन्यास के माध्यम से की है।

प्रमुख उपन्यासकार :

सामाजिक उपन्यासकार : इस युग के नये सामाजिक उपन्यासकारों में उपेन्द्रनाथ 'अश्क' एवं अमृतलाल नागर महत्वपूर्ण हैं।'अश्क' के 'सितारों का खेल' तथा 'गिरती दीवारें' में मध्यमवर्गीय जीवन का यर्थाथ अभिव्यक्त हुआ है। अमृतलाल नगर का 'महाकाल' बंगाल के दुर्भिक्ष की भयावहता को प्रस्तुत करता है। उदयशंकर भट्ट का प्रथम उपन्यास 'वह जो मैंने देखा' भी इसी युग में प्रकाशित हुआ।

प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारों ने भी इस युग में महत्वपूर्ण उपन्यासों की रचना की है। भगवती प्रसाद वाजपेयी कृत 'पिपासा', 'दो बहनें', निमंत्रण, प्रताप नारायण श्रीवास्तव कृत 'विजय', 'उषा देवीकृत' पियाजीवन की मुस्कान', पथचारी, आवाज तथा भगवतीचरण वर्मा कृत टेढे मेढे रास्ते इसी युग के उपन्यास हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास : वृन्दावनलाल वर्मा के प्रमुख उपन्यास हैं – 'मुसाहिब जू', 'झाँसी की रानी' तथा 'कचनार'। राहुल सांकृत्यायन के ऐतिहासिक उपन्यास 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' हैं। यशपाल के 'दिव्या' उपन्यास हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट की आत्मकथा', गोविन्दवल्लभ पंत के 'अमिताभ' तथा 'एकसूत्र', आचार्य चतुरसेन शास्त्री के 'मन्दिर की नर्तकी' एक 'रक्त की प्यास' तथा जयशंकर प्रसाद का 'इरावती' (अपूर्ण) इस युग के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

समाजवादी उपन्यास : मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित उपन्यासकारों में यशपाल का

नाम अग्रगण्य है। उनके प्रारम्भिक उपन्यासों में मार्क्सवाद का प्रभाव अधिक है। 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही' एवं 'पार्टी कामरेड' उनके प्रमुख उपन्यास हैं। राहुल सांस्कृत्यायन ने भी 'जीने के लिए', 'जादू का मुल्क' आदि उपन्यासों में इस विचारधारा का प्रतिपादन किया है। 'विषादमठ और घरौंदे' रांगेय राघव के उपन्यास हैं।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास : जैनेन्द्र के उपन्यास – 'त्यागपत्र' और 'कल्याणी इलाचन्द्र जोशी के मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी' एवं 'प्रेत और छाया' हैं। अजेय का 'शेखर एक जीवनी' औपन्यासिक विकास–यात्रा में 'मील का पत्थर' सिद्ध हुआ।

सीमाएँ : इस युग के मार्क्सवादी उपन्यासों में सिद्धांतों का प्रतिपादन अधिक हुआ है। इस कारण उनकी सहज रोचकता एवं संवेद्यता प्रभावित हुई है। कतिपय मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास भी सार्थक नहीं बन सके हैं क्योंकि वे केस–हिस्ट्री प्रतीत होते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर-युग (सन् 1947 से वर्तमान तक)

परिस्थितियाँ : 1947 की स्वतंत्रता प्राप्ति की घटना से भारतीय जनजीवन को सर्वथा नवीन मोड़ दिया। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक विघटन तो स्वतंत्रता से पूर्व भी था किन्तु राजनैतिक विघटन या सत्ता की स्वार्थपरता ने भ्रष्टाचार को और अधिक बढ़ावा दिया। इस कारण अमीर और अधिक अमीर हो गया और गरीब अधिक गरीब। सामाजिक–आर्थिक विकास तथा समानता के आश्वासनों से इस खाई को कम करने के बदले और भी चौड़ा करने का कार्य किया।

जहाँ विदेशी आक्रमणों ने हमारे राष्ट्रीय विकास में बाधा पहुँचाई। वहीं सफेद पोश असामाजिक तत्वों ने समाज में महँगाई, जमाखोरी तथा कालाबाजारी की समस्या को अधिक विकराल बना दिया। औद्योगीकरण एवं यांत्रिकीकरण के कारण मानव भी एक संवेदनहीन यंत्र बनता जा रहा है।

मोह भंग की निराशा लिए पुरानी पीढ़ी के साहित्यकार अपनी भावनाओं को व्यक्त कर रहे थे जबकि नए साहित्यकारों की अभिव्यक्ति कटु यथार्थपरक एवं व्यंग्यात्मक है। नयी पीढ़ी के साहित्यकारों पर पश्चिम की व्यक्तिवादी एवं अस्तित्ववादी विचारधारा का भी प्रभाव पड़ा।

प्रमुख उपन्यासकार

सामाजिक उपन्यास : सामाजिक उपन्यासों का उद्देश्य मात्र समस्याओं का चित्रण ही नहीं होता वरन यह ऐसा प्रस्तुतीकरण है जिसके माध्यम से पाठक, समाज में होने वाले कार्य–व्यापार के औचित्य–अनौचित्य को भलीभाँति परख सके। डॉ. शशिभूषण सिंहल के अनुसार – "समाज के सुपरिचित मूल्यों तथा वर्तमान समस्याओं के मध्य संघर्ष को

भलीभाँति चित्रित कर उसे किसी संतोषजनक और प्रेरक अंत तक पहुँचाने में सामाजिक उपन्यास की दृष्टि आलोचनात्मक रहती है।''

प्रमुख सामाजिक उपन्यासकार हैं –

भगवतीचरण वर्मा के महत्वपूर्ण उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर काल में प्रकाशित हुए। भगवती चरण वर्मा पर अनेक विचारधाराओं का प्रभाव है। उनके प्रमुख उपन्यास हैं – 'आखिरी दाँव', 'अपने खिलौने', 'भूले बिसरे चित्र', 'वह फिर नहीं आई', 'सामर्थ्य और सीमा', 'थके पाँव' आदि।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने अपने उपन्यासों के माध्यम से पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिवेश का यथार्थ चित्रण करते हुए मध्यवर्गीय पात्रों के संघर्ष को अभिव्यक्ति दी है। 'शहर में घूमता आईना', 'बाँधों न नाव इस ठाँव', 'बड़ी–बड़ी आँखें', 'पत्थर–अल–पत्थर' आदि उनके प्रमुख उपन्यास हैं।

अमृतलाल नागर के उपन्यास जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करते हुए भी विशिष्ट संदेश प्रदान करते हैं। 'बूँद और समुद्र' उनका सर्वोत्कृष्ट उपन्यास है। 'ये कोठेवालियाँ', वेश्या समस्या पर आधृत है। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में निम्नवर्गीय जीवन के यथार्थ को अत्यंत ही कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

भीष्म साहनी के 'तमस', 'झरोखे', 'कड़ियाँ' एवं 'वसंती' उपन्यास पारिवारिक – सामाजिक समस्याओं को चित्रित करते हैं। उदयशंकर भट्ट ने 'डॉ. शेफाली', 'एक नीड़ दो पंछी', 'शेष–अवशेष', 'दो अध्याय' आदि उपन्यासों में सामाजिक जीवन की विविध समस्याओं को उजागर किया है। प्रतापनारायण श्रीवास्तव कृत 'बयालीस', 'विसर्जन वेदना', 'विश्वास की वेदी पर'। भगवती प्रसाद वाजपेयी कृत 'गुप्तधन', 'चलते–चलते', 'पतवार', 'टूटा टी सेट', 'टूटते बंधन' तथा उषा देवी मित्रा कृत 'सोहिनी' एवं 'नष्ट नीड़' उपन्यास इस युग में लिखे गए।

आंचलिक उपन्यास : आंचलिक उपन्यासों का महत्व इसलिए अधिक है क्योंकि अंचल विशेष की भाषा, वेशभूषा, धर्म संस्कृति, आचार–विचार जीवन के साथ–साथ सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक प्रश्नों का संश्लिष्ट चित्रण होता है। डॉ. सुरेश सिन्हा के अनुसार 'आंचलिक उपन्यासों में किसी अंचल विशेष को कथा का आधार बनाकर वहाँ की सामान्य प्रवृत्तियों को व्यापक परिवेश में चित्रित करने का प्रयत्न किया जाता है। इस सीमित कथा की पूर्णता भी लेखन के लिए अपूर्ण रहती है। वह इसे समूचे राष्ट्र की सामान्य परिस्थितियों से संबद्ध कर पूर्ण एवं सार्वजनिक बनाने का प्रयत्न करता है। आंचलिक उपन्यासकारों में प्रमुख हैं –

फणीश्वरनाथ रेणु – 'मैला आँचल' उपन्यास में बिहार के पूर्णिया जिले के 'मेरीगंज' गाँव

का जीवन चित्र प्रस्तुत किया गया है।'परती परिकथा' उनका दूसरा उपन्यास है। नागार्जुन के उपन्यास भारतीय समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। इन्हींके द्वारा सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन संभव है। 'दुखमोचन', 'बाबा बटेसरनाथ', 'नयी पौध', 'बचलनमा', 'रतिनाथ की चाची' आदि इनके प्रमुख उपन्यास हैं।

अन्य महत्वपूर्ण आंचलिक उपन्यास हैं – 'जंगल के फूल' (राजेन्द्र अवस्थी), 'पानी की प्राचीरें', 'जल टूटता हुआ' (रामदरश मिश्र), 'अलग अलग वैतरणी' (शिवप्रसाद सिंह), 'बया का घोंसला और साँप' (लक्ष्मी नारायणलाल), 'पत्तों की बिरादरी' (मणि मधुकर) 'आधा गाँव' (राही मासूम रजा), 'काला जल' (शानी), 'कोहवर की शर्त' (केशव प्रसाद मिश्र), 'छोटे छोटे सवाल' (दुष्यंत कुमार), 'रागदरबारी' (श्रीलाल शुक्ल), 'धरती धन न अपना' (जगदीशचन्द्र), 'धरती मेरा घर', 'आखिरी आवाज', 'कब तक पुकारूँ', रांगेराघव आदि।

ऐतिहासिक उपन्यास : उपन्यासकार इतिहास बोध से प्रेरित होकर ऐतिहासिक उपन्यासों का सृजन करता है। डॉ. त्रिभुवनसिंह के अनुसार ''ऐतिहासिक उपन्यास की रचना साभिप्राय होती है। इसके द्वारा साहित्यकार को ऐसे चरित्रों का निर्माण करना रहता है जो कि वर्तमान समाज को प्रेरणा प्रदान कर सके तथा वह उस काल की परिस्थितियों को इस प्रकार उभारकर सजीव रूप में रखना चाहता है कि परिणामों के आधार पर हम वर्तमान समाज को उसके दोषों तथा दुर्बलताओं से बचा सके। प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकार है –

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के शब्दों में ''मैंने स्थिर सत्य और चिर सत्य के आधार पर ऐतिहासिक साहित्य को इतिहास से पृथक कर दिया। 'वैशाली की नगर वधू', 'देवागना', 'सोमनाथ', 'वयम रक्षाम', (दो भाग), 'सहमाद्रि की चट्टानें', 'सोना और खून' (दो भाग) आदि उनके लोकप्रिय उपन्यास हैं।

रांगेय राघव के उपन्यासों में प्रागैतिहासिक प्राचीन एवं मध्यकालीन जीनन और समाज का चित्रण हुआ है। उनके उपन्यासों में 'मुर्दो का टीला', 'चीवर', 'अंधेरे के जुगनू', 'प्रतिदान', 'राह न रुकी', 'पक्षी और आका', 'देवकी का बेटा', 'रत्ना की बात', 'लाई का दाना' आदि प्रमुख हैं।

वृन्दावनलाल वर्मा के स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में 'मृगनयनी' बहुत अधिक लोकप्रिय हुआ। उनके अन्य उपन्यास हैं – 'टूटे काँटे', 'अहिल्याबाई', 'भुवन विक्रम', 'माधव जीं सिंधिया', 'रामगढ़ की रानी'। वर्मा जी के उपन्यासों में इतिहास एवं कल्पना का अत्यन्त सुन्दर समन्वय हुआ है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास इतिहास, संस्कृति, दर्शन एवं लोकजीवन से संबद्ध

हैं। चारुचन्द्र लेख, गुप्तकालीन युग की परिस्थितियों का चित्रण करता है। 'अनामदास का पोथ' उपन्यास छांदोग्योपनिषद् के रैक्वाख्यास को नवीन रूप में प्रस्तु करता है।

अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों में यशपाल कृत 'अमिता', यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' कृत खून का टीका, वाल्मीकि त्रिपाठी कृत 'प्रजाप्रिय प्रजेश', यज्ञदत्त शर्मा कृत 'बदलता युग', के. सी. भार्गव कृत 'पुण्य समाधि' आदि प्रमुख हैं।

समाजवादी उपन्यास : समाजवादी उपन्यासों में दो धाराएँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। पहली धारा मार्क्सवादी सिद्धांतों से प्रेरित होकर क्रांति एवं वर्ग–संघर्ष की घोषणा करती है जबकि दूसरी धारा लोहिया–जयप्रकाश की समाजवादी मान्यताओं के आधार पर भारतीय सामाजिक–आर्थिक विषमताओं को भारतीय आदर्शों के अनुरूप सद्भावना एवं रचनात्मक सहयोग के माध्यम से दूरकर नवीन आदर्श समाज की स्थापना करना चाहती है। डॉ. सुरेश सिन्हा के अनुसार ''समाजवादी उपन्यास समाजवादी दर्शन के आधार पर समाज में व्याप्त वर्गभेद, शोषण, असंतोष, कुरीतियों व अन्यायों के विरोध में अपनी आवाज बुलंद करता है व नवीन समाज की स्थापना करने का प्रयास करता है। प्रमुख समाजवादी उपन्यासकार हैं –

यशपाल – न केवल मार्क्सवादी विचारधारा के सशक्त साहित्यकार है वरन् वे सक्रिय कार्यकर्ता भी रहे हैं। 'मनुष्य के रूप', 'बारह घंटे', 'अप्सरा का श्राप', 'क्यों फँसे', 'तेरी मेरी उसकी बात' आदि उनके स्वातंत्र्योत्तर युगीन उपन्यास हैं।

अमृतराय के उपन्यासों में 'बीज', 'जंगल', 'सुख–दुख', 'हाथी के दाँत' प्रमुख हैं।[13]

मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास : मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों में विशिष्ट पात्र की मनःस्थिति का सूक्ष्मांकन होता है।

डॉ. शशिभूषण सिंह के अनुसार – ''मनोवैज्ञानिक उपन्यास में मानवीय गतिविधि को मानसिक भूमिका का प्रत्यक्षीकरण रहता है। उसके पात्र अत्यधिक चिंतनरत होते हैं और अपने कर्म और विचारों से प्रायः समान्य मनोदशाओं का परिचय देते हैं। वे समाज से सामंजस्य–स्थापन न करके अपने अन्तर्मन में जा रमते हैं। वर्ण्य जीवन की समाज विच्छिन्नता और पात्रों की अतिशय मानसिक संकुलता ये मनोवैज्ञानिक उपन्यास के दो लक्षण हैं।

डॉ. देवराज ने अपने मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मानसिक संतुलन के लिए साकारात्मक चिंतन एवं उदात्तीकरण की महत्ता प्रतिपादित की। 'अजय की डायरी', 'दोहरी आग की लपट', 'पथ की खोज ' आदि उनके प्रमुख उपन्यास हैं। इलाचन्द्र जोशी के स्वातंत्र्योत्तर युगीन मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'मुक्तिपथ' और 'जिप्सी'हैं।

'अनदेखे अनजाने पुल' (राजेन्द्र यादव), आपका बंटी (मन्नू भंडारी) चित्तकोबरा (मृदुला गर्ग), धूमकेतु : एक श्रुति (नरेश मेहता), 'अन्तर्मुखी' (आनंद प्रकाश जैन), 'मनवृन्दावन' (लक्ष्मीनारायणलाल) आदि मनोवैज्ञानिक उपन्यास उल्लेखनीय हैं।

सीमाएँ : इस युग के कतिपय उपन्यास पाश्चात्य विचारधारा को भारतीय परिवेश में आरोपित करने के कारण असहज और असंवेद्य हो गए हैं अति बौद्धिकता तथा दार्शनिकता एवं जटिल प्रतीकात्मकता के कारण उपन्यासों की सहज रोचकता प्रभावित हुई है।[14]

कहानी

आधुनिक हिन्दी साहित्य में यह रूप भी बंगला के माध्यम से पाश्चात्य साहित्य से आया है। अंग्रेजी में जिसे 'शार्ट स्टोरी' कहते हैं, वही बंगला में गल्प तथा हिन्दी में कहानी नाम से प्रचलित हैं। हिन्दी में गल्प नाम का किसी मात्रा में प्रचलन रहा है, परन्तु कहानी शब्द ही सर्वाधिक स्वीकृत है। शार्ट स्टोरी के शब्दानुवादरूप में कभी-कभी इसे छोटी कहानी और 'लघुकथा' भी कहा जाता है।[15]

कहानी हिन्दी साहित्य की सबसे अधिक रोचक विधा है। इस वसुन्धरा पर मानव ही एकमात्र ऐसा प्राणी है जिसे वाणी का ईश्वरीय वरदान प्राप्त है। इसके माध्यम से वह अपने मन की भावनाओं और अपने विचारों की अभिव्यक्ति सहज रूप में कर सकता है। कहने और सुनने की भावना के कारण ही मानव की विकास-गाथा के साथ-साथ कहानी अपना विकास करती आई है।

लोककथाओं के रूप में कहानी ने कब जन्म लिया, यह कहना अत्यन्त ही कठिन है। वैदिक साहित्य के ऋग्वेद तथा छान्दोग्य उपनिषद आदि में भी कथा के सूत्र मिलते हैं। इसके उपरान्त संस्कृत की समृद्ध कथा-परम्परा का विकास क्रमशः गुणाढय - कृत 'बृहत्कथा', विशुशर्मा कृत 'पंचतंत्र', क्षेमेन्द्र कृत 'बृहत्कथा मंजरी', सोमदेव कृत 'कथासरित्सानर', नारायण कृत 'हितोपदेश', शिवदास कृत 'वेतालपंचविशतिका' तथा 'सिंहासन द्विविंशिका' आदि के माध्यम से स्पष्ट हो जाता है। मुगल संस्कृत के संम्पर्क के कारण लैला मजनू, शीरी-फरहाद आदि प्रेमकथाएँ भी यहाँ प्रचलित हो गई। अंग्रेजों के शासन-काल में भारतेन्दू से पूर्व लल्लूलाल के प्रेम सागर सदल मित्र के नासिकेतोपाख्यान इंशा अल्ला खाँ की रानी केतकी की कहानी आदि के माध्यम से खड़ी बोली के कथात्मक विकास को जाना जा सकता है। उक्त इतिहास से आधुनिक हिन्दी कहानी के विकास से प्रसाद की मजबूत नींव का परिचय प्राप्त होता है परन्तु निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय तो आधुनिक कहानी का स्वरूप पाश्चात्य कहानी से ही अधिक प्रेरित रहा। प्राचीन कथा साहित्य में जहाँ अप्राकृतिक तथा अतिप्राकृतिक तत्वों के साथ-साथ

मनोरंजन या उपदेश की प्रधानता थी वहां आधुनिक कहानी जीवन की समस्याओं से जुड़ने के लिए प्रयत्नशील रही। इसका स्वरूप सबसे पहले पाश्चात्य देशों में विकसित हुआ और उसके बाद भारत में। यही कारण है कि कहानी विषय पाश्चात्य विद्वानों की मान्यताएँ और परिभाषाएँ विशेष महत्व रखती हैं। जिसमें हल करने के लिए एक समस्या हो, हल की प्राप्ति में एक बाधा हो, संकटापन्न स्थिति हो, नाटक की भाँति असमंजस के क्षण हों और इन क्षणों की चरम स्थिति हो।[16]

हडसन साहब ने कहानी की परिभाषा और व्याख्या इस प्रकार है – 'लघुकथा में केवल एक ही मूल भाव होता है। उस मूल भाव का विकास तार्किक निष्कर्षो के साथ लक्ष्य की एक निष्ठता से सरल, स्वाभाविक गति से किया जाना चाहिए।

सरह्युम पोल ने कहानी की परिभाषा देते हुए कहा है – ''कहानी में घटनाओं का विवरण इस प्रकार चित्रित किया जाना चाहिए कि एक आशातीत विकास दिखाई पड़े। इस विकास की प्रेरिका सक्रियता होनी चाहिए यह विकास इस प्रकार दिखाया जाना चाहिए कि वह हमारी जिज्ञासा वृत्ति को स्थिर रखते हुए चरम बिंदु का स्पर्श कर एक संतोषजनक पर्यवसित तक पहुँच जाए।[17]

हिन्दी विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ

डॉ. श्यामसुन्दर दास ने लिखा है कि 'आख्यायिका एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को लेकर लिखा गया नाटकीय आख्यान है।'' इस परिभाषा में नाटकीय तत्वों को विशेष महत्व दिया गया है।

श्री इलाचन्द जोशी ने कहानी का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''जीवन का चक्र नाना परिस्थितियों के संघर्ष से उलटा सीधा चलता रहता है। इस सुवृंहत चक्र की किसी विशेष परिस्थिति की स्वाभाविक गति के प्रदर्शित करने में ही कहानी की प्रमुख विशेषता निहित रहती है।[18]

कहानी विकास विकास क्रम – कहानी साहित्य के विकास को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. प्राक् प्रेमचन्द युग सन् 1900 से 1910 ई.
2. प्रेमचन्द युग – सन् 1910 से 1936 ई.
3. प्रेमचन्दोत्तर–युग सन् 1936 से 1947 ई.
4. स्वातंत्र्योत्तर युग – सन् 1947 से वर्तमान तक

प्राक् प्रेमचन्द युग (सन् 1900 से 1910 ई.)

परिस्थितियाँ : सन् 1900 में इलाहाबाद से 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन प्ररम्भ

हुआ। इसी वर्ष से 'सुदर्शन' भी प्रकाशित हुआ। इन दोनों ने कहानी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

इस युग की परिस्थितियों के कारण निबन्ध विधा ने भारतेन्दु युग की अल्हड़ता और आत्मीयता के स्थान पर विचारात्मक गम्भीरता ग्रहण कर ली तो कहानी ने अपनी रोचकता, कौतुहलप्रियता व मनोरंजकता से जन सामान्य को आकृष्ट किया।

हिन्दी की पहली कहानी कौन सी है, यह अत्यन्त ही विवाद का विषय है। डॉ. श्री कृष्णलाल, पं. किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती' कहानी को प्रथम मौलिक कहानी मानते हैं जो सन् 1900 में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी कतिपय आलोचकों ने 1903 में प्रकाशित रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' कहानी को प्रथम मौलिक कहानी स्वीकार करते हैं। श्रीमती राजेन्द्र बाला घोष 'बंग महिला' रचित दलाईबाली (1907) कहानी भी मिलती है। आचार्य शुक्ल इसे प्रथम मौलिक कहानी स्वीकार करते हैं।

कतिपय आलोचक इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' को पहली कहानी मानते हैं। परन्तु देवीप्रसाद वर्मा, डॉ. श्रीधर मिश्र तथा डॉ. पुष्पपाल सिंह आदि विद्वान माधवराय सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' को पहली मौलिक कहानी स्वीकार करते हैं।

सन् 1909 में प्रकाशित वृन्दावनलाल वर्मा की 'राखी बंदभाई' कहानी से उनकी ऐतिहासिक कहानियों का प्रारम्भ हुआ। मैथिलीशरण गुप्त की कहानी 'निन्यानवे का फेरा' (1910) भी इसी युग में प्रकाशित हुई।

सीमाएँ : इस काल की अधिकाँश कहानियों के कथानक वर्णनात्मक हैं। घटनाएँ आकस्मिक संयोगपूर्ण और कौतुहलयुक्त चमत्कार पर आधारित हैं।

प्रेमचन्द युग (सन् 1910 से 1936 ई.)

परिस्थितियाँ : इस युग से परतंत्र भारत राष्ट्रीय चेतना के शंखनाद से गूंज उठा। लोकमान्य तिलक के 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' के नारे ने भारत सिंह को जैसे सोते हुए जगा दिया था। महात्मा गाँधी के आगमन ने भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम को अहिंसा, सत्याग्रह तथा असहयोग के नये अनुभूत सत्यों के साथ नयी दिशा दी। गाँधीजी ने अपने विचारों से जनता का हृदय जीत लिया। साहित्यकार भी उनके प्रभाव से अछूते न रह सके।

'इन्दु' पत्रिका में जयशंकर प्रसाद की कहानी 'ग्राम' प्रकाशित हुई। इसके साथ कहानी विधा अपने विकास पथ पर अग्रसर हुई। पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'सुखमय जीवन' (1911) 'भारतमित्र' में प्रकाशित हुई। गुलेरीजी ने तीन कहानियों के बल पर हिन्दी कहानी साहित्य में अपना नाम अमर कर लिया। 'बुद्धू का काँटा' उनकी

दूसरी कहानी है। 'उसने कहा था' 1915 में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। उनकी यह कहानी अत्यधिक लोकप्रिय हुई।

इस युग के दो प्रमुख कहानीकार हैं प्रेमचन्द तथा प्रसाद। प्रेमचन्द ने समाष्टि प्रधान तथा प्रसाद ने भावप्रधान परम्परा का प्रतिनिधित्व किया।

प्रेमचन्द जी ने उर्दू में 'नवाबराय' के नाम से कहानियाँ लिखीं। 'सोजे वतन' जब्त होने पर गाँधी जी के सिद्धान्तों से प्रभावित हो 'प्रेमचन्द' के नाम से हिन्दी में लिखने लगे। उन्होंने लगभग 300 कहानियाँ लिखी हैं जो 'मानसरोवर' के आठ भागों में संग्रहीत हैं। प्रेमचन्द की कहानियों की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं –

1. प्रेमचन्द की कहानियों की मूल चेतना समष्टिगत एवं यथार्थवादी है – प्रेमचन्द जीवन और समाज यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले साहित्यकार हैं।

2. निम्न वर्ग तथा मध्य वर्ग का सहानुभूतिपूर्वक चित्रण – प्रेमचन्द ने निम्नवर्ग तथा मध्य वर्ग की समस्याओं को अपने आसपास के परिवेश में बहुत नजदीक से देखा है। उन्होंने व्यक्तिगत, आर्थिक, धार्मिक तथा पारिवारिक, विशेष रूप से संयुक्त परिवार से जुड़ी विविध समस्याओं को उजागर किया है।

3. आर्थिक एवं विषमता का व्यापक चित्रण – सामाजिक समस्याओं के मूल में आर्थिक विषमता ही प्रमुख कारण है। प्रेमचन्द ग्राम जीवन के चितेरे हैं।

4. आदर्श एवं यथार्थ का सामंजस्य – प्रेमचन्द के शब्दों में "....... मगर हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सचाइयों का प्रकाश हो – जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"

5. मानव एवं मानव मूल्यों में आस्था – प्रेमचंद अपनी कहानियों के माध्यम से प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः मानव मूल्यों में आस्था व्यक्त करते हैं।

6. जीवन के सभी पक्षों तथा विविध सामाजिक समस्याओं को विषय बनाया – प्रेमचंद ने ऐतिहासिक, राष्ट्रीय, सामाजिक, पारिवारिक, वैयक्तिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक सभी विषयों पर लिखा। तत्कालीन समाज की ज्वलन्त समस्याओं जैसे अछूत समस्या, विधवा विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, नैतिकता, अनैतिकता, धार्मिक पाखंड आदि को उन्होंने अपनी कहानी का विषय बनाया।

7. कथ्य-शिल्प की दृष्टि से रचनात्मक विकास तीन स्तरों पर –

– प्रथम स्तर काल 1917 से 1920 मान सकते हैं। इस काल में 'सप्त सरोज',

'नवनिधि' और 'प्रेम-पचीसी' कहानी संग्रह प्रकाशित हुए। 'पंच परमेश्वर', 'बड़े घर की बेटी', 'नमक का दरोगा' आदि कहानियों में परिचयात्मकता घटना प्रधानता एवं आदर्शवाद की प्रमुखता है।

– द्वितीय स्तर सन् 1920 से 1930 का है। इस काल की कहानियाँ 'प्रेम प्रसून' और 'प्रेम द्वादशी' में संग्रहीत हैं। 'वज्रपात', 'मुक्तिका मार्ग', 'महातीर्थ' में चरित्र-चित्रण पर विशेष बल होने से कथानक संगठित हुआ है। ये कहानियाँ आदर्शोन्मुख यथार्थवादी हैं।

– सन् 1930 से 1936 का काल उनके अनुभव और लेखन का उत्कर्ष काल रहा है। इस काल की 'पूस की रात', 'नशा', 'कफन' आदि कहानियों में मनोवैज्ञानिकता के साथ-साथ जीवन का यथार्थ चित्रित हुआ है।

प्रेमचन्द परम्परा के अन्य कहानीकार

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' – कौशिक जी की कहानियाँ 'चित्रशाला' (भाग एक व दो) 'कल्लोल' तथा 'पेरिस की नर्तकी' में संग्रहीत हैं। 'रक्षाबंधन', 'नाई', 'इक्केवाला' आदि उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

राजा राधिका रमण सिंह – गांधीवाद से प्रभावित होने के कारण इनकी कहानियों में भी आदर्शवादी स्वर की गूँज हैं। 'कानों में कंगना', 'हवेली और झोपड़ी', 'गाँधीटोपी', 'सावनी सथाँ', 'नवतारा' आदि इनकी प्रमुख कहानियाँ हैं।

सुदर्शन – इनकी महत्वपूर्ण व लोकप्रिय कहानी 'हार की जीत' है। इस कहानी से ही इन्हें हिन्दी साहित्य में प्रसिद्धि मिली है।

इनके कहानी संग्रह हैं – 'पुष्पलता', 'सुप्रभात', 'परिवर्तन', 'सुदर्शन सुधा', 'फूलवती', 'सुदर्शन-सुमन', 'अँगूठी का मुकदमा'।

इनके अतिरिक्त वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीप्रासाद वाजपेयी, गंगा प्रसाद श्रीवास्तव, विश्वम्भरनाथ जिज्ञा, ज्वालादत्त शर्मा, गोविन्द वल्लभ पंत आदि प्रेमचन्द परम्परा के महत्वपूर्ण कहानीकार हैं।

प्रसाद परम्परा – जयशंकर प्रसाद मूलतः छायावादी कवि हैं। साथ ही कहानीकार हैं। साथ ही कहानीकार हैं। उनके कहानी संग्रह हैं – 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आँधी' और 'इन्द्रजाल'। पहला सोपान सन् 1911 से 1922 तक का है। 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाश दीप', आँधी और इन्द्रजाल। प्रसाद की कहानी-काल भी तीन सोपानों में विकसित हुई है। पहला सोपान सन् 1911 से 1922 तक का है। 'छाया' तथा प्रतिध्वनि से संग्रहीत उनकी प्रारम्भिक कहानियाँ ऐतिहासिक तथा वर्णनात्मक हैं। सन् 1923 से 1929 में दूसरे सोपान की कहानियाँ लिखी गयीं। 'आकाशदीप' संग्रह की

कहानियाँ अन्तर्द्वन्द्व युक्त तथा संवेदना से परिपूर्ण हैं। सन् 1930 से 1937 का समय तीसरे सोपान का है। मनोवैज्ञानिक आधार होने के कारण ये कहानियाँ पाठकों को सहज ही प्रभावित करती हैं। उनकी कहानियों की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. व्यष्टि के अंतः सौंदर्य के कथाकार : प्रसाद जी का ध्यान पात्र के अन्तःसौंदर्य पर अधिक केंद्रित रहा है। वे प्रेम, करुणा, सेवा, सहयोग, दया, ममता, सरलता और निश्छलता के कथाकार हैं। विशेषकर नारी पात्रों के चरित्र–चित्रण अद्वितीय हैं उदाहरणार्थ 'आकाश दीप', 'पुरस्कार' तथा 'ममता' कहानी।

2. स्वर्णिम अतीत का गौरव गान – उनकी भावुकता व कल्पना उन्हें वर्तमान की विद्रूपताओं के बदले स्वर्णिम अतीत की ओर ले जाती है। उस स्वर्णिम अतीत में उन्हें उनकी स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के अनुकूल वातावरण मिल जाला है। उनकी कहानियों में जीवन के सामान्य यथार्थ को कम और स्वर्णिम अतीत के गौरव, मसृण भावुकता, कल्पना की ऊँची उड़ान तथा काव्यात्मक चित्रण को अधिक महत्व मिला है।

3. स्वच्छन्दतावादी भावबोध और मानवतावादी दृष्टि – उनकी कहानियाँ स्वछंदतावादी रोमांटिक भावबोध से संपन्न हैं। जिसमें मानव सामाजिक–आर्थिक वैषम्य तथा भेदभाव से ऊपर प्रेम, सौंदर्य तथा करुणा के आदर्श भावात्मक जगत में प्रतिष्ठित हैं।

4. शिल्पगत वैशिष्ट्य – उनकी कहानियाँ शिल्प की दृष्टि से भी विशिष्ट स्थान रखती हैं। उनकी कहानियों में नाटकीयता है। रहस्यमयता है। तथा भाषा में काव्यात्मकता है। 'आकाशदीप' तथा 'पुरस्कार' कहानी इस दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट हैं।

प्रसाद–परंपरा के अन्य कहानीकार

आचार्य चतुरसेन शास्त्री – आचार्य शास्त्रीने लगभग 450 कहानियाँ लिखीं। ये कहानियाँ ऐतिहासिक–सामाजिक घटनाओं पर आधारित हैं। 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' उनकी लोकप्रिय कहानी है 'बाहर–भीतर', 'धरती और आसमान', 'सोया हुआ शहर' तथा 'कहानी खत्म' हो गई उनकी कहानी संग्रह हैं।

विनोद शंकर व्यास – इनकी कहानियाँ भी भावना प्रधान हैं। इनके कहानी संग्रह 'तूलिका', 'भूली बात', 'मधुकटी', (दो भाग), 'नवपल्ब', 'उसकी कहानी', 'माणिदीप' आदि हैं।

स्वतंत्र व्यक्तित्व के कहानीकार

पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र का व्यक्तित्व पूर्ण रूप से स्वतंत्र है। इन्होंने 'अढटावक्र' नाम से राष्ट्रीय कहानियाँ लिखी हैं। इसी कारण इन्हें क्रौंतिकारी कहानी का जन्मदाता माना जाता है। 'पंजाब की महारानी', 'रेशमी', 'सनकी अमीर', 'जब सारा आलम सोता है', इनके कहानी–संग्रह हैं।

सीमाएँ – यह युग सही अर्थों में कहानी के विकास का युग है। प्रारंभिक कहानियों में वर्णनात्मकता एवनं घटना बहुलता दृष्टिगोचर होती है।

प्रेमचन्दोत्तर युग (सन् 1936 से 1947)

परिस्थितियाँ – राष्ट्रीय स्तर पर गाँधीजी के 'करो या मरो' नारे ने राष्ट्रीय आन्दोलन को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। उधर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर द्वितीय विश्वयुद्ध की घटना ने सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया।

सामाजिक प्रवृत्ति – सामाजिक प्रवृत्ति का विकास करने वाले कहानीकारों में चन्द्रगुप्त विद्यालंकार महत्वपूर्ण हैं। 'चन्द्रकला', 'वापसी' तथा 'अमावस' इनके प्रमुख कहानी संग्रह हं। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने भी सामाजिक परिवेश की कहानियाँ लिखी हैं।

इनके अतिरिक्त अक्षय कुमार जैन, रामवृक्ष बेनपुरी, कमलादेवी चौधरी, उषादेवी मित्रा आदि भी प्रमुख कहानीकार हैं।

2. ऐतिहासिक प्रवृत्ति – इस प्रवृत्ति के प्रतिनिधि कहानीकार वृन्दावनलाल वर्मा हैं। उनके कहानी–संग्रह 'शरणागत' तथा 'कलाकार का दंड' हैं। अन्य कहानीकारों में भगवत शरण उपाध्याय की कहानियाँ 'संघर्ष' और 'गर्जना' में तथा राहुल सांकृत्यायन की कहानियाँ 'वोल्गा से गंगा' एवं 'सतमी के बच्चों' में संग्रहीत हैं।

3. प्रगतिवादी प्रवृत्ति – इस प्रवृत्ति के प्रतिनिधि कहानीकार यशपाल हैं। उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं – 'पिंजड़ की उड़ान', 'तर्क का तूफान', 'ज्ञानदान', 'फूलों का कुत्ता', 'अभिशप्त', 'उत्तमी की माँ', 'तुमने क्यों कहा कि मैं सुंदर हूँ' आदि हैं।

4. मनोवैज्ञानिक एवं व्यक्तिवादी प्रवृत्ति – इस प्रवृत्ति के प्रमुख कहानीकार 'जैनेन्द्र, जोशी और अज्ञेय हैं। इन तीनों में मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक दृष्टि में अन्तर है इस कारण अलग अलग विचार विवेचन अपेक्षित है।

जैनेन्द्र – इनकी दार्शनिकता तथा मनोवैज्ञानिक प्रभाव में इन्हें व्यक्तिवादी बना दिया है पर इनकी व्यक्तिवादिता समाज विरोध नहीं है। प्रमुख कहानी संग्रह हैं – 'वातायान', 'स्पर्धा', 'फाँसी', 'दो चिड़ियाँ' आदि।

अज्ञेय – अज्ञेय भी जैनेन्द्र की तरह मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं। परन्तु जहाँ जैनेन्द्र का व्यक्तिवादी समाज की उपेक्षा नहीं करता वहाँ अज्ञेय में सामाजिक तटस्थता या कहीं–कहीं विरोध की भावना भी मिलती है। जहाँ जैनेन्द्र ने मानव–मन के सत्य को उजागर करने के लिए मनोविज्ञान का प्रयोग किया है वहीं अज्ञेय ने मानव–मन की ग्रंथियों और कुंठाओं के चित्रण हेतु मनोविज्ञान का आश्रय लिया है। 'विपथगा', 'परम्परा', 'कोठरी की बात', 'शरणार्थी', 'जयदोल', 'अमरवल्लरी' और 'ये तेरे प्रतिरूप' अज्ञेय के प्रमुख कहानी–संग्रह हैं।

इलाचन्द्र जोशी – इनकी कहानियाँ मनोविश्लेषण प्रधान हैं। विश्लेषण होने के कारण इनपर यह आरोप लगाया जाता है कि इन्होंने नहीं केस हिस्ट्री लिखी हैं। जोशी जी की कहानियाँ फ्रायडीस चिन्तन से प्रभावित हैं। इस कारण सामान द्वारा तिरस्कृत पात्रों के प्रति इनकी कहानियों में सहानुभूति व्यक्त की गई हैं। इनके प्रमुख कहानी संग्रह 'धूप की रेखा', 'होली और दीवाली', 'खंडहर की आत्माएँ' तथा 'डायरी के नीरस पृष्ठ' हैं। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत भगतीप्रसाद वाजपेयी (हिलोर, पुष्करिणी, खाली बोतल) तथा भगवती चरण वर्मा (खिलते फूल, इन्स्टालमेंट, दो बाँके) ने भी कहानियाँ लिखी हैं।

सीमाएँ – इस युग में पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित कहानियाँ लिखी गयीं। इस कारण कहीं–कहीं असहजता और असंवेद्यता दृष्टिगोचर होती है। दार्शनिकता एवं प्रतीकात्मकता के कारण कहानियाँ जटिल हो गयीं तथा उनकी सहज संप्रेषणीयता भी प्रभावित हुई है।

स्वातंत्र्योत्तर युग (सन 1947 से वर्तमान तक)

परिस्थितियाँ – सन् 1947 में राष्ट्र के विभाजन के फलस्वरूप सम्पूर्ण राष्ट्र में अराजकता की स्थिति निर्मित हो गयी, जिसका दुष्परिणाम बापू की हत्या के रूप में सामने आया। सारा राष्ट्र स्तब्ध रह गया।

अस्तित्ववादी विचारधारा ने भारतीय साहित्यकारों को आकृष्ट किया साथ ही बदलती हुई नैतिक, सामाजिक आर्थिक एवं धार्मिक मान्यताओं ने भी कहानीकारों को प्रभावित किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त बढ़ती हुई मँहगाई, बेकारी, भ्रष्टाचार एवं भाई–भतीजावाद की प्रवृत्ति ने जनमानस को विक्षुब्ध तो किया परन्तु स्वदेशी शासन के प्रति विश्वास बना रहा। इन्हीं परिस्थितियों ने कहानीकार को नयी कहनी के लिए प्रेरित किया।

नयी कहानी

नयी कहानी और कहानीकार के विवाद में न पड़ते हुए यह माना जा सकता है कि नयी कहानी सन् 1950 के बाद की कहानी है। जिसका सूत्रपात 1951 के आस–पास हुआ और जो सन् 1955 से 1956 में विधिवत स्थापित हुई।

नयी कहानी के कहानीकारों में मोहन राकेश (इंसान के अंडहर, नये बादल, जानवर और जानवर, फौलाद का आकाश), कमलेश्वर (राजा निरबंसिया, कस्बे का आदमी, खोई हुई दिशाएँ, माँस का दरिया) तथा राजेन्द्र यादव (देवताओं की मूर्तियाँ, खेल–खिलौने, जहाँ लक्ष्मी कैद है, अभिमन्यु की हत्या, छोटे–छोटे ताजमहल, किनारे से किनारे तक टूटना) प्रमुख हैं। नई कहानी के विकास में मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, निर्मल वर्मा, मुक्तिबोध, अमरकांत, धर्मवीर भारती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा अमृतराय, भैरव प्रसाद गुप्त तथा विष्णु प्रभाकर ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

आंचलिक तथा ग्राम्य कहानी – 1950 के बाद की नगरबोध की कहानियों के समानांतर आंचलिक कहानियाँ लिखी गई। आंचलिक कहानीकारों में प्रमुख हैं – फणीश्वरनाथ रेणु (ठुमरी, आदिम, रात्रि की महक) शिवप्रसाद सिंह (कर्मनाशा की हार, इन्हें भी इंतजार है, मुरदा सराय), मार्कण्डेय (महुए का पेड़, हंसा जाई अकेला, सहज–शुभ), शेखर जोशी (कोसी का घटवार), शैलेश मटियानी (मेरी तैंतीस कहानियाँ, दो दुखों का एक सुख आदि।

सीमाएँ – कहानी विधा का व्यावसायिक दृष्टि से महत्व बढ़ जाने के कारण कहानी लेखन तो तीव्र गति से हुआ परन्तु इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि कथ्य मौलिक और अनुभूत न होकर आयातित और अप्रामाणिक होने लगा जिससे कहानी विधा दिशाहीन होने लगी। नई कहानी ने अपनी घोषणाओं द्वारा अपने नयेपन का प्रचार तो कर दिया पर उसकी कतिपत कमियों जैसे भावुकता, रूमानियत और आदर्शवाद की झलक आयातित तथा ओढ़ी हुई अनुभूतियों की प्रस्तुति तथा नये मूल्यों की खोज के बदले मूल्य ह्रास एवं विघटन की प्रवृत्ति ने उसकी सीमाएँ सिद्ध कर दीं।

साठोत्तरी कहानी – सन् 1960 के उपरांत कहानी–साहित्य के विकास में एक नया मोड़ आया। स्वतंत्रता के बाद की नई पीढ़ी ने लिखना प्रारम्भ किया। इस पीढ़ी का भी मोह भंग हुआ। मोह भंग की इस व्यथा ने निराशा, हताशा व टूटन को जन्म दिया। इस कारण कहानी विधा में सन् 1960 के बाद अनेक आंदोलन सामने आए। आंदोलनों ने कहानी के विकास को भी गति दी है। ''वास्तव में देखा जाए तो कहानी के ये विविध नाम साठोत्तरी कहानी के विकास के ही आयाम हैं, जहाँ संवेदना और शिल्प के स्तर पर कहानी ने अपने में कुछ अर्जित किया है।''

अकहानी – फ्रांस में जन्मी 'एंटी स्टोरी' इस आंदोलन की प्रेरणा तथा अस्तित्ववादी विचारधारा ही इसकी पृष्ठभूमि है। अकहानी के सम्बन्ध में डॉ. गंगाप्रसाद विमल ने लिखा है – ''अकहानी कथा के स्वीकृत आधारों का निषेध तथा किसी भी तरह के मूल्य स्थापना अस्वीकार है।''

ज्ञानरंजन (फेंस के इधर–उधर), दूधनाथ सिंह (सपाट चेहरे वाला आदमी), रवींद्र कालिया (एक प्रामाणिक झूठ), प्रयाग शुक्ल (अकेली आकृतियाँ) के अतिरिक्त डॉ. गंगाप्रसाद विमल, निर्मल वर्मा, श्रीकान्त वर्मा, काशीनाथ सिंह, मधुकर सिंह, मनहर चौहान, आदि अकहानी आंदोलन के प्रमुख कहानीकार हैं।

अकहानी की विशेषता को ही आधार बनाकर डॉ. गंगाप्रसाद विमन ने समकालीन कहानी का नारा दिया। यहाँ समकालीन का अर्थ समय विशेष से उतना नहीं है जितना जिवन–दृष्टि की समानता से है।

सचेतन कहानी – 'आधार' पत्रिका के 'सचेतन कहानी विशेषांक' 1964 (सं. महीप सिंह) से इस आंदोलन का प्रारंभ हुआ। डॉ. महीप सिंह ने सचेतन कहानी को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'सचेतन कहानी' सक्रिय भावबोध की कहानी है, वह जिन्दगी की स्वीकृति की कहानी है। पश्चिम की भोंडी नकल और ओढ़ी हुई मानसिकता से प्रेरित होकर जिन्दगी की व्यर्थता, नितांत अकेलेपन और बनावटी घुटन का प्रदर्शन नहीं करती।

सचेतन कहानीकारों में महीपसिंह (सुबह के फूल, उजाले के उल्लू) मनहर चौहान (बीस सुबहों के बाद, घर घुसरा), जगदीश चतुर्वेदी (आधा खिले गुलाब) धर्मेन्द्र गुप्त (मोड़ से पहले), कमल जोशी (ढलाना), हिमांशु जोशी (आदमीः जमाने का) आदि प्रमुख हैं।

समानांतरी कहानी – इस आंदोलन के प्रारम्भकर्ता कमलेश्व माने जाते हैं। समान्तर–1 (1972) के प्रकाशन के समान्तर कहानी को जाना गया है। 'सारिका' के अनेक समान्तर कहानी विशेषांक (अक्टूबर 1974 से) प्रकाशित हुए जिन्होंने इसे लोकप्रिय बनाया।

जनवादी कहानी – वामपंथी विचारधारा से प्रेरित जनवादी कहानी सातवें दशक के अंत में ही उदित हो गई थी परंतु आठवें दशक में अपनी स्पष्ट पहचान बना सकी। सन् 1982 में 'जनवादी लेखक संघ' की स्थापना के साथ 'जनवादी कहानी' का आंदोलन विधिवत प्रारम्भ हुआ।

सक्रिय कहानी – सक्रिय कहानी के प्रणेता राकेश वत्स के अनुसार इसे आंदोलन का प्रारम्भ सन् 1975 में हुआ। उनके शब्दों में – "सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है आदमी की चोतनात्मक और ऊर्जा और जीवन्तता की कहानी।"

राकेश वत्स, अब्दुल विस्मिल्लाह, रमेश बतरा, विवेक मिझावन, चित्रा मुदगल, धीरेन्द्र, अस्थाना, सच्चिदानंद धूमकेतु आदि सक्रिय कहानी के प्रमुख कहानीकार हैं। रमेश बतरा की 'जंगली जुगराफिया', विवेक निझावन की 'पहली जीत' उल्लेखनी कहानियाँ हैं।

साठोत्तरी कहानी की सीमाएँ

इन आंदोलनों के कारण कहानीकर गुटबाजी तथा स्वयं को प्रणेता सिद्ध करने की कोशिश में लगे रहे। एक ही कहानीकार एकाधिक आंदोलनों से जुड़ा होने कारण अपने चिंतन की दिशा स्पष्ट नहीं कर सका। पश्चिमी विचारधाराओं को अपनाकर तथा पश्चिमी लेखन की नकल पर लेखन करने की प्रवृत्ति ने कहानी के विकास को अत्यधिक क्षति पहुँचाई है।[19]

संस्मरण

संस्मरण के मूल में अतीत की स्मृतियाँ निहित रहती हैं, जो व्यक्तिगत सम्पर्क का परिणाम होती हैं। उन्हीं स्मृतियों को संस्मरणकार सजीव रूप में प्रस्तुत करता है। संस्मरण लेखक जो कुछ देखता है और अनुभव करता है उसे अपनी अनुभूतियों में राग-संजित कर प्रस्तुत कर देता है। वह इतिहासकार की भाँति तथ्यपरक विवरण भर नहीं देता, वरन् अपनी अनुभूतियों को साहित्यिकता से अभिमंडित कर उपस्थित करता है।[20]

लेखक यदि अपने सम्बन्ध में लिखे तो उसकी रचना आत्मकाला के निकट होगी यदि अन्य व्यक्तियों के विषय में लिखे तो जीवनी के निकट। इन दो प्रकार के संस्मरणों को अंग्रेजी में क्रमशः 'रेमिनिसेंसेज' और 'मेम्वॉयर्स' कहते हैं। इस दृष्टि से स्मृति के आधार पर किसी विषय या व्यक्ति के सम्बन्ध में लिखित लेख या ग्रन्थ को संस्मरण कहा जा सकता है।[21]

परिभाषा – भारतीय काव्यशास्त्र में स्मरण अलंकार रूप में चिरकाल से प्रयुक्त होता रहा है। लेकिन आज संस्मरण एक विधा के रूप में प्रचलित है। इस विधा को विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा का कथन है – अनभूति की कलात्मक अभिव्यक्ति कला के माध्यम से संस्मरण होता है। संस्मरण यथार्थ होता है। इसमें संस्मरणकार के वे क्षण होते हैं, जो उसने स्वयं जिये हैं।

स्वरूप : व्युत्पत्ति की दृष्टि से संस्मरण शब्द स्मृ धातु में सम् उपसर्ग तथा ल्यूट प्रत्यन (अन्) लगाकर बना है। इस प्रकार संस्मरण का शाब्दिक अर्थ है सम्यक स्मरण। 'सम्यक' का अर्थ है पूर्णरूपेण। इस प्रकार संस्मरण का शाब्दिक अर्थ है किसी व्यक्ति, घटना, दृश्य, वस्तु आदि का आत्मीयता और गंभीरतापूर्वक स्मरण। इस प्रकार से अनुभव एवम् स्मृति के आधार पर आत्मीयता एवम् गंभीरतापूर्वक रचे गये इतिवृत्त अथवा वर्णन ही संस्मरण कहलाते हैं। लेखक अपने निजी अनुभवों को कभी किसी व्यक्ति के माध्यम से व्यक्त करता है तो कभी घटना, वस्तु अथवा क्रिया-कलाप के माध्यम से। ये घटनाएँ एवम् क्रिया-कलाप कभी किसी महान व्यक्ति के साथ जुड़े होते हैं तो कभी किसी सामान्य जनके साथ। ये घटनाएँ चाहे जिसके साथ क्यों न जुड़ी हों किन्तु लेखक सदैव उनके माध्यम से ऐसे मानवगुणों को तलाशता रहता है जो मनुष्य को जड़ एवम् यांत्रिक बनने से रोकते हैं, जो हमारे जीवन के सामने एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

पाश्चात्य विद्वान शिमले ने 'टेक्नीकल टर्म्स आव लिट्रेचर' में लिखा है कि संस्मरणकार संस्मरण में अपने से भिन्न उन व्यक्तियों, वस्तुओं और क्रियाकलापों आदि का संस्मरणात्मक चित्रण करता है जिसका उसे अपने जीवन में साक्षात्कार हो चुका है।

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत संस्मरण में व्यक्तित्व को अधिक महत्व देते हुए उनका कथन है – ''भावुक कलाकार जब अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशिष्टताओं से विशिष्ट बनाकर रोचक ढंग से यथार्थ रूप में व्यक्त करता है, तब उसे संस्मरण कहते हैं। श्री राजेन्द्र अवस्थी के अनुसार संस्मरण एक समूचा जीवन–दर्शन है। वह व्यक्ति के समूचे व्यक्तित्व को भी प्रभावित करता है, तो उसके एक छोटे से अंग को भी। संस्मरण एक बहुत व्यापक श्रेणी है, क्योंकि इसमें व्यक्ति से लेकर स्थान, काल तक का समावेश होता है।

अमृता प्रीतम इससे आगे बढ़कर लिखती हैं – ''हम जो कुछ भी लिखते हैं वह अप्रत्यक्ष रूप से संस्मरण ही हैं, क्योंकि हम जो कुछ भी देखते हैं उसका प्रभाव मन व चेतना पर पड़ता है हम जो भी कहानी लिखते हैं, वह अप्रत्यक्ष संस्मरण ही हैं।''[22]

उपर्युक्त परिभाषाओं का परीक्षण करने के बाद यह निष्कर्ष निकलता है कि संस्मरण में 'स्मृति' मूल तत्त्व है। व्यतीत होते ही सब कुछ स्मृति का अंग बन जाता है और दृष्टि वहीं से उपलब्ध होती है। इस प्रकार अतीत के अनुभवों और प्रभावों को स्मृति के सहारे शब्दों में रूपायित करने वाली विशिष्ट गद्य विधा संस्मरण है।

इस प्रकार संस्मरण अतीत को सजीव करते हैं और अपने पाठकों को जीवन के विविध पक्षों का साक्षात्कार कराते हैं। इसलिए इनमें स्वभावतः रोचकता, मनोरंजकता के साथ स्वयं की कराते हैं। अनुभूतियाँ और संवेदना निहित रहती है।

संस्मरण घटनात्मक घटित होते हैं। घटनाएँ प्रायः सत्य होती हैं और वर्णित व्यक्ति या वस्तु के चरित्र का परिचय देती हैं। संस्मरणकार जो कुछ भी लिखता है वह अपनी सम्पूर्ण भावना, आदर्श, निष्ठा, पसन्द, नापसन्द आदि को दृष्टिपथ में रखकर लिखता है।[23]

संस्मरण साहित्य का विकास

हिन्दी में पर्याप्त मात्रा में संस्मरण साहित्य उपलब्ध है। जिस प्रकार नवीन साहित्य –रूपों का जन्म पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से ही हुआ है, उसी प्रकार हिन्दी संस्मरण विधा का भी जन्म सुधा, सरस्वती, माधुरी चाँद, विशाल भारत आदि विविध पत्र–पत्रिकाओं से ही हुआ है। वास्वत में इन्हीं पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से संस्मरण साहित्य विधा के विकास को काफी बल मिला। अधिकांश विद्वानों ने पं. प्रतापनारायण मिश्र पर बाबू बालमुकुन्द के सन् 1907 में लिखे गये संस्मरण को हिन्दी का प्रथम संस्मरण माना है। वैसे कुछ लोग स्वामी सत्यदेव परिव्राजक को और कुछ पदमसिंह शर्मा को हिन्दी का प्रथम संस्मरण–लेखक मानते हैं।

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY • Baroda University

भारतेन्दु जी आधुनिक काल के जनक माने जाते हैं। उन्होंने गद्य की अन्य विधाओं की तरह संस्मरण-लेखन का भी कार्य किया। उनका कुछ भी आपबीती कुछ जगबीती शीर्षक एक सुन्दर संस्मरण है। इस कृति में वर्णन स्मृति पर ही आधारित है। हिन्दी में संस्मरण साहित्य विधा का वास्तविक लेखन द्विवेदी-युग से ही माना जाता है।[24]

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्वयं अनुमोदन का अन्त (फरवरी 1905), सभा की सभ्यता (अप्रैल 1907), विज्ञानाचार्य बसु का विज्ञान मन्दिर (जनवरी 1918) आदि की रचना करके संस्मरण साहित्य की श्रीवृद्धि की। सरस्वती के विभिन्न अंकों में महावीर प्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त रामकुमार खेमका, जगतबिहारी सेठ, पाण्डुरंगा खानखोजे, प्यारोलाल मिश्र, काशीप्रसाद जयसवाल, जगन्नाथ खन्ना, भोलादत्त पाण्डेय आदि द्वारा क्रमशः लिखी गयीं इधर-उधर की बातें (मई 1918), मेरी बड़ी छुट्टियों का प्रथम सप्ताह (जून 1913), वाशिंगटन महाविद्यालय का संस्थापन दिनोत्सव (अक्टूबर 1913), लन्दन का फाग या कुहरा (फरवरी 1908), इंग्लैंड के देहात में महाराज बनारस का कुँआ (जुलाई 1907), अमेरिका आनेवाले विद्यार्थियों को सूचना (दिसम्बर 1911) और मेरी नयी दुनिया सम्बन्धी रामकहानी (दिसम्बर 1909) शीर्षक रचनाएँ प्रकाशित हुई। आलोच्य युग में प्रकाशित उपर्युक्त अधिकांश संस्मरण प्रवासी भारतीयों द्वारा लिखे गये और प्रायः सभी का अभीष्ट भारतीय पाठकों को पश्चिम की रीति-नीतियों, दर्शनीय स्थलों आदि से परिचित कराना था। यही कारण है कि इनकी शैली अनेक स्थलों पर निबन्धात्मक हो गयी है। पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित संस्मरण-साहित्य की दृष्टि से हरिऔध जी के संस्मरण ही इस युग की उल्लेखनीय कृति है। यद्यपि इस पुस्तक पर वेनीमाधव शर्मा का नामोल्लेख लेखक के रूप में किया गया है, किन्तु कृति के निवेदन से यह ज्ञात होता है कि इसके लेखक बालमुकुन्द गुप्त हैं।

सन् 1918 से लेकर सन् 1938 तक का हिन्दी साहित्य छायावाद-युग के नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि इस युग में विपुल काव्य-राशि का प्रणयन एवं प्रकाशन हुआ, किन्तु गद्य साहित्य का भी कम परिणाम में नहीं रचा गया। इस युग में संस्मरण साहित्य का भी पर्याप्त प्रकाशन हुआ। पूर्ववर्ती युग के समान इस युग में भी पत्र-पत्रिकाओं ने ही संस्मरण साहित्य की श्रीवृद्धि में सर्वाधिक योग दिया। सरस्वती में रामकुमार खेमका, कृपानान मिश्र, रामनारायण मिश्र, भगवानदीन दुबे, रामेश्वरी नेहरू, श्रीमन्नारायण अग्रवाल आदि के अनेक यात्रावृत्त मूलक संस्मरण प्रकाशित हुए जिनसे देश-विदेश के जीवन के विविध पक्षों, दर्शनीय स्थलों, प्राकृतिक सौंदर्य आदि को वर्णन-विवरणपरक भावात्मक शैली में रोचक ढंग से रूपायित किया गया है। विशाल भारत, सुधा और माधुरी में भी कतिपय उल्लेखनीय संस्मरण प्रकाशित हुए। आचार्य रामदेव, अमृतलाल चक्रवर्ती, बनारसीदास

चतुर्वेदी, मंगलदेव शर्मा प्रभृति लेखकों ने इन पत्रिकाओं के लिए क्रमशः स्वामी श्रद्धानन्द, बालमुकुन्द गुप्त, श्रीधर पाठक और पद्मसिंह शर्मा से सम्बद्ध जीवनीपरक संस्मरणों की रचना की। सुधा (1921) में प्रकाशित इलाचन्द्र जोशी कृत मेरे प्राथमिक जीवन की स्मृतियाँ तथा वृन्दावनलाल वर्मा कृत कुछ संस्मरण भी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री के अतिरिक्त इस अबोध में संस्मरणों के कतिपय संकलन भी प्रकाशित हुए जिनमें शिवराम पाण्डेय, श्रीराम शर्मा, मन्मथनाथ गुप्त तथा शिवनारायण टण्डन द्वारा क्रमशः रचित मदन मोहन के सम्बन्ध में कुछ पुरानी स्मृतियाँ, शिकार क्रान्तियुग के संस्मरण और झलक उल्लेखनीय हैं। इसमें से अन्तिम कृति में हरिऔध जी के जीवन की कुछ स्मृतियाँ दी गई हैं। बाबूराव विष्णुराव पराड़कर द्वारा सम्पादित 'हंस' का 'प्रेमचन्द स्मृति अंक' (1937) तथा ज्योतिलाल भार्गव द्वारा सम्पादित 'साहित्यिकों के संस्मरण' भी इस युग की उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

ज्योतिलाल भार्गव द्वारा संपादित पुस्तक में यों तो सभी संस्मरण अपनी अनुपम छटा रखते हैं किन्तु लाला भगवानदीन, श्रीधर पाठक और रायदेवी प्रसाद पूर्ण संबंधी संस्मरण एकदम अछूते बन पड़े हैं। दीन जी की स्वभावगत विशेषताओं को संख्याबद्ध करने की शैली यह अनायास स्पष्ट कर देती है कि इस संस्मरण की रचना डॉ. श्याम सुन्दरदास सरीखे किसी अध्यापक ने ही की होगी।

आलोच्य युग से संस्मरण लेखक को साहित्यिक सौन्दर्य प्रदान करने का श्रेय आचार्य पं. पद्मसिंह शर्मा को है। इन्होंने अपने जीवन-काल में अनेक संस्मरणों की रचना की। पद्मपराग में इनके प्रतिनिधि संस्मरण संकलित हैं। महाकवि अकबर इलाहाबादी पर लिखे गए इनके प्रतिनिधि संस्मरण संकलित हैं। महाकवि अकबर इलाहाबादी पर लिखे गये इनके संस्मरण सर्वाधिक सराहे गये हैं। ये संस्मरण जहाँ एक ओर महाकवि अकबर के जीवन को रूपायित करने में समर्थ हैं तो वहीं दूसरी ओर स्वयं शर्माजी की विद्वता, जिन्दादिली, हाजिरजवाबी, अचूक भाषाधिकार आदि गुणों को उजागर करते हैं। इन संस्मरणों ने सर्वश्री श्रीराम शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि अनेक लेखकों को संस्मरण लिखने की प्रेरणा भी दी। इस प्रकार शर्मा जी ने न केवल संस्मरण साहित्य को समृद्ध किया अपितु एक अनुकरणीय प्रेरक का भी काम किया।

हिन्दी संस्मरणों के इतिहास में श्री रामशर्मा को पं. पद्मसिंह शर्मा का सच्चा उत्ताराधिकारी माना जाता है। इनके पास विषय को शब्दों में मूर्तकर देने की वैसी ही क्षमता है तथा भाषा शैली में वैसा ही नुकीलापन है जैसा पं. पद्मसिंह शर्मा में था। बयालीस के संस्मरण इनकी एसी कृति है जिसमें तदयुगीन अनेक नेताओं की विशेषताओं को उभारा गया है। शर्मा जी की कृतियों में केवल यही एक ऐसी कृति है जो शुद्ध

संस्मरणों के अन्तर्गत आती है। शेष सभी कृतियों में 'बोलती प्रतिमा', 'प्राणों का सौदा', 'वे जीते कैसे हैं', आदि में संस्मरणों के साथ-साथ रेखाचित्र भी अनुस्यूत हैं।

सन् 1938 से अब तक का साहित्य छायावादोत्तर युग के अन्तर्गत गिना जाता है। इस युग में संस्मरणों को प्रायः रेखाचित्र की संज्ञा दी जाती रही यह भूलकर कि संस्मरण तथा रेखाचित्र में साम्य की अपेक्षा वैषम्य ही अधिक है। इस युग के लेखकों में बनारसीदास चतुर्वेदी का अन्यतम स्थान है। 'हमारे आराध्य', 'संस्मरण' एवं 'सेतुबन्ध' में इनके प्रतिनिधि संस्मरण संकलित हैं। इन्होंने अपने संस्मरणों में सम्पर्क में आने वाली व्यक्तियों की कटु-मधुर स्मृतियों का प्रत्यंकन करते हुए उनकी विशेषताओं को उभारा है। ग्रन्थों की भूमिका में इन्होंने इन दोनों विधाओं के रचना-शिल्प पर भी महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। हिन्दी संस्मरण-साहित्य की श्रीवृद्धि में महादेवी वर्मा ने अत्याधिक महत्वपूर्ण योगदान किया है। अतीत के चलचित्र, 'स्मृति की रेखाएँ', 'पथ के साथी', 'स्मारिका' और 'मेरा परिवार' उनके उल्लेखनीय संग्रह हैं। 'मेरा परिवार' में 'धर्मयुग' के सन् 1970 के विभिन्न अंकों में प्रकाशित नूलू कुत्ता दुर्मुख खरगोश सोनाहिरनी आदि पशुओं पर प्रकाशित अत्यन्त संवेदनापूर्ण संस्मरण संकलित हैं। यद्यपि महादेवी वर्मा की रचनाओं के विधायक स्वरूप को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है – इन्हें निबन्ध, संस्मरण और कहानी में कोई एक संज्ञा भी दी जाती रही है; किन्तु ये निर्विवादरूपेण संस्मरण ही हैं – हाँ यह अवश्य है कि इनमें चित्रोपमता का गुण इतना कूट-कूट कर भरा है कि वह अनेक बार रेखाचित्र होने का भ्रम पैदा कर देता है, लेकिन इस गुण के कारण इन्हें अधिक से अधिक रेखाचित्रात्मक संस्मरण ही कहा जा सकता है। स्वयं महादेवी वर्मा ने महादेवी साहित्य भाग दो की भूमिका में लिखा है ये संस्मरण विविध हैं और समय की दूरी ने इन्हें धूमिल नहीं किया है। कभी किसी प्रत्यक्ष व्यक्ति, वस्तु, घटना या परिवेश से मेरी स्मृदित पर पड़ी समय की नीरन्ध्र यवनिका कुछ हट जाती है और तब अतीत के अनेक चित्र अपनी सम्पूर्ण सजीवता के साथ प्रत्यक्ष होकर मुझे उसी अतीत अनुभवलोक में पहुँचा देती हैं। अतीत में मिले खोए व्यक्तियों या पशु-पक्षियों को स्मरण करते समय कभी-कभी मेरे इतने आँसू गिरे हैं कि लिखा हुआ कागज गीला हो जाने के कारण नष्ट हो गया है और कभी-कभी हँसी ने मुझे इतना अस्थिर कर दिया है कि मेरी लिखावट टेढ़ी-मेढ़ी हो गई है। मेरे संस्मरणों में मेरे आँसू और हँसी के ही नहीं, अनेक तीव्र आवेगों के गहरे चिह्न अलग-अलग पहचाने जा सकते हैं।

महादेवी ने अपने संस्मरणों में अपने संपर्क में आनेवाली दीन-हीन नारियों, शोषिता व्यक्तियों, साहित्यकारों, जीव-जन्तुओं आदि का संवेदनामूलक चित्रण कर उन्हें मार्मिक रूप दे दिया है। अपनी संवेदना को कवित्वपूर्ण शैली के माध्यम से मूर्तकर देने में उन्हें विशेष

कौशल प्राप्त है। ये साहित्यकार होने के साथ-साथ चितकत्री भी हैं, अतएव इनके संस्मरणों में चित्रोपमता का गुण अनायास समाविष्ट हो गया है।

रेखाचित्र तथा संस्मरण के अन्तर को ध्यान में रखते हुए इन दोनों विधाओं की श्रीवृद्धि में योग देने वाले लेखकों में प्रकाशचन्द्र गुप्त का स्थान काफी ऊँचा है। पुरानी स्मृतियाँ में इनके प्रतिनिधि स्मृति-चित्र संकलित हैं।

इस युग के अन्य संस्मरण-लेखकों में राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह का नाम उल्लेखनीय है। संस्मरणमूलक कहानियाँ लिखने में वे अप्रतिम हैं। ऐसे ही एक कहानी संग्रह टुटा तारा में संकलित मौलवी साहब तथा देवीबाबा शीर्षक संस्मरण विशेषतः पठनीय है। सार्थ विशेषणों, विशिष्ट उपमाओं एवं ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग उनकी शैलीगत विशेषताएँ हैं। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर कृत जिन्दगी मुस्कराई में संकलित संस्मरण तथा माटी हो गयी सोना एवं दीप जले शंख बजे में संगृहीत रेखाचित्र भी उल्लेखनीय हैं। मामूली व्यक्ति अथवा घटना पर प्रांजल भाषा तथा चुस्त शैली में संस्मरण डालने की कला में ये निष्णात हैं। शिवपूजन सहाय के संस्मरण वे दिन वे लोग में संकलित हैं। व्यंग्य - विनोद से पुष्ट मुहावरेदार भाषा में लिखित उनके संस्मरणों में चित्रोपमता का गुण कूट-कूट कर भरा है। देवेन्द्र सत्यार्थी भावात्मक संस्मरण लिखने के लिए प्रख्यात है। रेखाएँ बहोल उठीं, क्या गोरी, क्या साँवरी, एक युग एक प्रतीक, आदि में अनेक साधारण-असाधारण व्यक्तियों पर स्मृति चित्र अंकित किए गए हैं शान्तिप्रिय द्विवेदी की स्मृतियाँ और कृतियों में उनके कवि-हृदय की अभिव्यक्ति मिलती है। लेखक ने उन परिस्थितियों का अत्यन्त स्पष्ट अंकन किया है जो उसके अपने व्यक्तित्व के विकास में बाधक रही हैं।

रेखाएँ और चित्र मंटो मेरा दुश्मन और ज्यादा अपनी कम परायी में हिन्दी के प्रतिष्ठित कथाकार तथा नाटककार उपेन्द्रनाथ अश्क के संस्मरण और रेखाचित्र संकलित हैं। यथास्थान चुटीले व्यंग्य, कथात्मक शैली तथा उर्दू-अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों के प्रयोग द्वारा उन्होंने अपनी रचनाओं को सदैव प्रवाहपूर्ण बनाए रखा है। विष्णु प्रभाकर ने कुछ शब्द : 'कुछ रेखाएँ' में सामाजिक स्थितियों तथा उनके मूल में छिपी विसंगतियों का सटीक विश्लेषण किया है। राहुल सांकृत्यायन का संस्मरण साहित्य बचपन की स्मृतियाँ, जिनका मैं कृतज्ञ तथा मेरे असहयोग के साथी में संकलित हैं। बोलचाल की प्रवाहपूर्ण भाषा के द्वारा अपने हृदय की भावुकता को व्यक्त करते हुए अपने सम्पर्क में आनेवाले छोटे-बड़े तथा मामूली-महान सभी व्यक्तियों को समान रूप से महत्व देते हुए मर्मस्पर्शी रचनाओँ का प्रणयज्ञ इनके लेखक की विशेषता है। राहुल जी के समान भदन्त आनन्द कौशल्यायन भी यात्रा-प्रिय लेखक हैं। अपनी जीवनयात्रा में जिन व्यक्तियों के साथ इनका

सम्पर्क हुआ उन्हें इन्होंने जो न भूल सका तथा रेल का टिकट नामक संग्रहों में अमर कर दिया है।

हिन्दी के प्रख्यात रसवादी आलोचक एवं निबन्धकार डॉ. नगेन्द्र ने भी कुछ भावभीने स्मृति-चित्र लिखे हैं। 'चेतन के बिम्ब' में संकलित ऐसी रचनाओं में विश्लेषण की गम्भीरता तथा तटस्थता पर अधिकबल रहा है। सेठ गोविन्ददासने भी स्मृतिकण में संस्मरण शैली तथा चेहरे जाने-पहचाने युग की विषणताओं का सशक्त चित्रण करते हुए अपने पारिवारिक आत्मीय जनों के संस्मरण लिखे हैं।

संस्मरण-साहित्य को अलंकृत करने वाले कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, राम धारीसिंह दिनकर तथा हरिवंश राय बच्चन भी उल्लेखनीय हैं। चतुर्वेदी जी ने समय के पाँव में अनेक भावपूर्ण संस्मरण संजोए हैं। दिनकर की रचनाओं में लोकदेव नेहरू तथा संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ उल्लेखनीय हैं जिनमें सरल एवं भावपूर्ण भाषा के माध्यम से अपने युग के प्रमुख साहित्यकारों, राजनीतिक नेताओं आदि के निजी समबन्धों का अंतरंगपिरिचय दिया है। हरिवंशराय बच्चन की उल्लेखनीय कृति है नए पुराने झरोखें जिसमें लेखक ने यथास्थान आधुनिक हिन्दी साहित्य पर टिप्पणियाँ देते हुए उसकी दुर्बलताओं और सबलताओं का सशक्त अंकन किया है।

जैनेन्द्र कुमार कृत 'ये और वे' में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, प्रेमचन्द, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय, महादेवी वर्मा, महात्मा गाँधी आदि अनेक महत्वपूर्ण साहित्यकारों एवं राजनीतिज्ञों के संस्मरण संकलित हैं। इन रचनाओं के अध्ययन से यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि संस्मर्ण्य के प्रति लेखक का क्या दृष्टिकोण है। संस्मर्ण्य के प्रदेय का मूल्यांकन इन संस्मरणों की एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता है।

आलोच्य युग में कतिपय अन्य लेखकों ने भी अपनी मूल्यवान रचनाओं द्वारा हिन्दी के संस्मण साहित्य को समृद्ध कयिा है। चतुरसेन शास्त्री विरचित वातायन शांतिप्रिय द्विवेदी कृत पथ चिह्न, कैलाशनाथ काटजू की मैं भूल नहीं सकता, इन्द्रविद्या वाचस्पति की मैं इनका ऋणी हूँ, विनोद शंकर व्यास की प्रसाद और उनके समकालीन सम्पूर्णानन्द की कुछ स्मृतियाँ और स्फुट विचार, हरिभाऊ उपाध्याय की मेरे हृदय देव, रायकृष्ण दास वी जवाहरभाई, उनकी आत्मीयता और सहृदयता, कुन्तल गोयल की कुछ रेखाएँ कुछ चित्र, डॉ. हरगुलाल की घेरे भीतर और बाहर, पद्मिनी मेनन की चाँद और लक्ष्मीनारायण सुधांशु की व्यक्तित्व की झाँकियाँ निश्चय ही इन विधाओं की अन्य उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

संस्मरण साहित्य की सबसे अनमोल निधिवे पत्र पत्रिकाएँ हैं जिनमें ये नियमित रूप

से प्रकाशित होते रहे हैं। सरस्वती में 'मनोरंजक संस्मरण, नई धारा में मुझे याद है, धर्मयुग में एक दिन की बात, अविस्मरणीय, जब मैं सोलह साल की थी, आदि शीर्षक के अन्तर्गत बेहिसाब संस्मरण प्रकाशित हुए हैं। संस्मरण का यह भण्डार परिमाण की दृष्टि से ही नहीं, विषय–वैविध्य की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि ये जीवन के विविध क्षेत्रों यथा चिकित्सा, क्रीडा, फिल्म जगत, अध्यापन आदि में काम करने वाले व्यक्तियों के साथ सम्बद्ध हैं। इनमें डाकुओं के भी संस्मरण हैं तथा समाज सुधारकों के भी खिलाड़ियों के भी फिल्मी कलाकारों के भी। संस्मरणों का ऐसा संगम अन्यन्त्र अप्राप्त नहीं तो दुर्लभ अवश्य है।

पत्र–पत्रिकाओं के अतिरिक्त अभिनन्दन तथा स्मृति ग्रन्थों में भी शताधिक संस्मरण संकलित हैं। यद्यपि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इनमें से बहुत से ऐसे हैं जिनमें आत्मीयता के स्थान पर औपचारिकता तथा गुण दोष विश्लेषण के स्थान पर प्रशस्तिमान की अनुगूंज सुनाई देती है किन्तु संस्मर्ण्य की सूझ–बूझ, प्रशासन–क्षमता, अदम्य धैर्य एवम् साहस तथा अन्यान्य सहज मानव गुणों को उद्घाटित करने वाले संस्मरणों का भी अभाव नहीं है।[25]

हिन्दी में संस्मरण साहित्य की प्रगति देखकर लगता है कि भविष्य मे संस्मरण–साहित्य रोचक एवं उत्कृष्ट हो जाएगा और अपूर्व भण्डारण हिन्दी गद्य को प्रदान करेगा।

रेखाचित्र

मनुष्य के सभी कला प्रयासों में अनिवार्य रूप से एक ही आशय निहित रहता है यह आशय है – सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति इसी प्रयोजन की पूर्ति हेतु मनुष्य नित नवीन खोज में लगा हुआ है। नव नवीन आविष्कारों ने वर्तमान युग को इतना द्रुतगामी बना दिया है कि इस गति के फलस्वरूप सामाजिक जीवन के सामने अनेक समस्याएँ उपस्थित होती रहती हैं। इस द्रुतगमिता के फलस्वरूप साहित्य में भी नव–नवीन रुपविधाओं का जन्म हुआ। इन रूप–विधाओं में रेखाचित्र भी एक सशक्त और प्रभावशाली विधा है।[26]

यह चित्रकला और साहित्य के सुन्दर सुहाग से उद्भूत एक अभिनव कला–रूप है। रेखाचित्र लेखक साहित्यकार के साथ–साथ चित्रकार भी होता है। थोड़े से शब्दों में किसी वस्तु, घटना, तथ्य और दृश्य को अंकित कर देना अथवा किसी व्यक्ति का सजीव चित्र शब्दांकित कर देना बहुत देना अथवा किसी व्यक्ति का सजीव चित्र शब्दांकित कर देना बहुत ही कठिन काम है। जिस प्रकार चित्रकार को चित्रनिर्मित के समय तूलिका को बहुत ही कुशलता और सफाई से चलाना पड़ता है, अन्यथा रंग के किंचित गहरे या हल्के हो जाने से चित्र बिगड़ सकता है, उसी प्रकार रेखाचित्रकार को अपने शब्दचित्र

की निर्मित में बहुत ही सावधान रहना पड़ता है। एक–एक शब्द की प्रयुक्ति में उसकी कुशलता अपेक्षित होती है।[27]

पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में रेखाचित्र

वास्तव में हिन्दी में 'रेखाचित्र' शब्द अंग्रेजी के 'स्केच' के पर्याय के रूप में आया है। ''ए हैंडबुक ऑफ लिटररीटर्म्स'' में रेखाचित्र उसे कहा गया है जो 'एक लघुनाटक, कहानी अथवा चिरित्र–विवरण होता है। इन स्केचों में प्रायः सामाजिक घटनाओं के विद्रुतात्मक चित्रण से युक्त विश्रृखल नाटकों की अथवा वेशभूषा प्रदर्शन की वस्तु है, जो हलके विनोद एवं व्यंग्य को लिए रहती है। इसका ही अन्य प्रमुख प्रकार है साहित्यिक ''स्केच'' जो लघु तथा विवरण प्रधान होते हैं।[28]

परिभाषा : रेखाचित्र हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण और आधुनिक विधा है। रेखाचित्र को परिभाषा में बाँधपाना कठिन लेखनी है।

अंग्रेजी साहित्य में ''रेखाचित्र'' का प्रणयन वास्वत में सत्रहवीं शताब्दी में ही हो गया था। सत्रहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध रेखाचित्रकार ओवरबरी द्वारा दी गई परिभाषा रेखाचित्र के विकासमान रूप पर प्रकाश डालती है। वे लिखते हैं – रेखाचित्र मिस्त्री चित्रलिपि के समान होता है वह प्रभावशाली तथा सांकेतिक होता है क्योंकि इसमें गागर में सागर भरा जाता है। अंग्रेजों के दृष्टिकोण से चरित्र एक बहुरंगी चित्र होता है जिसका छायांश एक रंग के प्रयोग द्वारा प्रभावशाली बनाया जाता है। यह वीणा के तारों पर त्वरित गति से एक साथ किए गए कोमल आघात के समान होता है, जिसका अन्त एक संगीत भरी ध्वनि के साथ होता है। सामान्य गीत में वाग्वैदग्ध्य का समावेश ही रेखाचित्र को जन्म देता है। आकार की लघुता, चरित्र का विवरण सामाजिक विद्रुपताओं पर व्यंग्य आदि।

मर्फी की परिभाषा में दृष्टिगोचर होता है। वे कहते हैं, रेखाचित्र किसी विशिष्ट व्यक्ति, स्थान अथवा उपादान की विशेषताओं का संक्षिप्त वस्तुगत विवरण होता है जिसे समन्वित रूप दे दिया जाता है। इसका प्रभावशाली निर्देशन वहाँ होता है जहाँ किसी व्यक्ति के कार्य–व्यापार के माध्यम से उसकी विशेषताओं का विवरण दिया जाता है। इसमें सिद्धान्त निरूपण या समीक्षा के लिए स्थान नहीं होता इसका उद्देश्य व्यंग्य प्रधान या नीतिप्रधान होताहै और शैली प्रायः वैदग्धपूर्ण।''

हिन्दी विद्वानों की दृष्टि में रेखाचित्र

हिन्दी में ''रेखाचित्र'' की विशेषताएँ प्राचीन काव्य में पाई जाती है। रासों काव्य में रेखाचित्र की अनेक विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती है। रीतिकालीन कवियों ने नायिकाओं के जो नखशिख वर्णन किये हैं वे भी रेखाचित्र की कोटि में आ सकते हैं।

किन्तु ''रेखाचित्र'' शब्द का प्रयोग जिस विधा के लिए किया जाता है वह सर्वथा

आधुनिक युग की देन है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रेखाचित्र के सम्बन्ध में लिखते समय ''रेखा'' और ''रंग'' दोनों के अन्तर एवं चित्र में उनके महत्व पर अपना मंतव्य इस प्रकार स्पष्ट करते हैं–

'रेखा–रेखाओं का भारतीय चित्रकला में एक मुख्य स्थान है। प्राचीन चित्रकला में रेखाओं की विशेष महत्ता थी। रेखाओं से चित्रकला में विभिन्न विधियों से कार्य लिया जाता था और उनका स्थान चित्र में रंग और रूप से पहले आता था क्योंकि रेखाओं से ही रूप का निर्माण होता है। इतिहास से पूर्व के जो भी चित्र मिलते हैं उनमें भी रेखाओं की प्रधानता रही है। व्राह्म्ण तथा बौद्धकालीन चित्रों में भी रेखा प्रधान थी। अजंता की सारी चित्रकला रेखाओं के वितान पर ही निर्मित है। यहाँ की रेखाओं के उतार–चढ़ाव में एक आश्चर्यजनक जादू–सा दिखलाई पड़ता है, उनमें से प्राणवान जीवन ही झलकता है। रेखाओं से चित्र में दिशा–निर्देशन किया जाता है। कभी धीरे–धीरे कभी वेग से चलकर ऊपर से नीचे की ओर भारी होकर या अनायास इधर–उधर दौड़कर रेखाएँ विभिन्न प्रकार के मनोभावों को इंगित कर सकती है विभिन्न प्रकार के विचारों भावों मनोभावों तथा मनोवेगों को उत्पन्न करती हैं हल की रेखा अस्पष्ट होकर दूरी का बोध कराती है। गहरी, स्पष्ट रेखा निकटता की घोतिका है। गहरी रेखा से शक्ति तथा दृढ़ता का आभास होता है। रेखाओं में भोलापन, क्षीणता एवं उतार–चढ़ाव लाकर कोमलता, सुकुमारता तथा नीरसता का ज्ञान कराया जा सकता है। जब रेखाओं में तेजी होती है तब ये मनोभावों को ऊपर ले जाती हैं और वीरता या शूरता का बोध कराती हैं। जब रेखाएँ क्षीण होकर चलती हैं तो संदेह, अनिश्चितता तथा दौर्बल्य का भान होता है। इस तरह रेखाएँ मन के विभिन्न भावों को बड़ी सरलता से व्यक्त कर सकती हैं। चित्र में रेखाओं की यह स्थिति हूबहू रेखाचित्र पर लागू है।[29]

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने रेखाचित्र को परिभाषित करते हुए कहा है कि जिस प्रकार चित्रकार अपनी तूलिका के कलामय स्पर्श से चित्र पटल पर अंकित विश्रृंखल रेखाओं में से कुछ अधिक उभरी हुई रेखाओं को सँवार कर एक सजीव रूप प्रदान कर देता है उसी प्रकार रेखाचित्रकार मनःपटल पर विश्रृंखल रूप में बिखरी हुई शत–शत स्मृति–रेखाओं में से उभरी हुई रमणीय रेखाओं को अपनी कला की तूलिका से स्वानुभूति के रंग में रंजित कर जीते–जागते शब्द–चित्र में परिणत कर देता है। यही शब्दचित्र रेखाचित्र कहलाता है।[30]

डॉ. भागीरथ मिश्र के अनुसार सम्पर्क में आये किसी विलक्षण व्यक्तित्व अथवा संवेदना को जगाने वाली सामान्य विशेषताओं से युक्त किसी प्रतिनिधि चरित्र के मर्मस्पर्शी स्वरूप को देखी–सुनी या संकलित घटनाओं की पृष्ठभूमि में इस प्रकार उभार कर देखना

कि उसका हमारे हृदय में एक निश्चित प्रभाव अंकित हो जाय, रेखाचित्र या शब्दचित्र कहलाता है।[31]

श्री कृपाशंकर सिंह के अनुसार ''रेखाचित्र हमारे सम्मुख अनुभव में आए किसी चरित्र की विशेषताओं को मार्मिक रूप से उपस्थित करता है। इसके लिए अनुभूति की मार्मिकता अनिवार्य है।

डॉ. सिद्धनाथ कुमार के अनुसार – रेखाचित्र किसी व्यक्ति, वस्तु घटना या भाव का कम से कम शब्दों में मर्मस्पर्शी, भावपूर्ण एवं सजीव अंकन है।

तात्पर्य यह है कि रेखाचित्र संवेदना को जगाने वाली किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना का शब्दों द्वारा विनिर्मित वह मर्मस्पर्शी और भावमय रूप–विधान है जिसमें लेखक का संवेदनशील हृदय और उसकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण–दृष्टि अपना निजीपन उड़ेल कर प्राण–प्रतिष्ठा कर देती है।[31]

स्वरूप

रेखाचित्र एक ऐसी विधा है जो निबंध, कहानी, संस्मरण, रिपोर्ताज आदि के निकट होते हुए भी इन सबसे भिन्न तथा अपने में पूर्ण है। अन्य साहित्यिक विधाओं के समान इसका उद्देश्य भी रागात्मक ध्वनि–चित्रों द्वारा पाठकों को रस मग्न करना होता है, अतः इसकी रूप–रचना में उन विशेषताओं की समानता पाई जाती है जो सभी विधाओं में समान हैं।

रेखाचित्र शब्द सुनते ही हमारे मन में एक ऐसी गद्य–रचना की कल्पना उत्पन्न होती है। जो अपनी लाघनपूर्ण शैली में किसी व्यक्ति, स्थान, भाव, वातावरण घटना, दृश्य आदि को इस प्रकार चित्रित करता है कि थोड़ी देर के लिए वह हमारे सामने मूर्तिमान हो जाता है। यह कहना उचित ही है कि व्यापक आयामों पर होनेवाले विवेचन और विश्लेषण के लिए तो रेखाचित्र में स्थान नहीं होता, किन्तु, इसका यह अर्थ भी नहीं है कि चित्र खंडित रूप में आए। पहली बात तो यह है कि चित्र कभी खंडित रूप में आता नहीं (यह दूसरी बात है कि चित्र के एक खंड को ही कला का साधन बनाया जाय, जैसा कि नयी कविता में हुआ था) वह सदैव ही पूर्ण रूप में आता है, इसे मनोविज्ञान ने प्रमाणित कर दिया है। इस बिम्ब को यदि कलाकार चाहे तो सूक्ष्म रूप देकर गहन तथा व्यंजनापूर्ण बना सकता है। रेखाचित्र में इसी कोटि के गहन तथा व्यंजनापूर्ण बिम्ब प्रयुक्त होते हैं। यह स्वाभाविक है कि समीक्षकों को रेखाचित्रों के बिम्बों की यह लाघव पूर्ण सूक्ष्मता उतार–चढ़ाव विहीन लगे।

रेखाचित्र व्यंजनामूलक रचना होने के कारण आकार में भी लघु होती है। आज के अतिव्यस्त तथा मानवीय चेतना पर पड़नेवाले अनेक दबावों के कारण तनावपूर्ण वातावरण

के फलस्वरूप पाठकों के पास इतना समय नहीं होता कि वे लम्बी-लम्बी रचनाओं का आस्वादन कर सकें फलता लघु और अतिलघु रचनाओं की आवश्यकता पड़ती है। रेखाचित्र इस आवश्यकता की पूर्ति का एक अत्यन्त सफल साधन सिद्ध हुआ है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा महान से क्षुद्र की ओर झुकनेवाली मनोवृत्ति ने अवतारों, राजाओं, सामन्तों, नेताओं तथा धर्माचार्यों आदि के स्थान पर किसानों मजदूरों, भिखारियों, चूड़िहारिनों, कैदियों, चोरों पहलवानों, खंडहरों, सड़कों, पशुओं, दृश्यों आदि को चित्रण का आधार बनाया है। उपर्युक्त सभी विषयों पर रेखाचित्र लिखे गये हैं। क्रोस का मत है कि वास्तविक जीवन का यथार्थवादी विधि से अंकन करने वाला गद्य-साहित्य ही रेखाचित्र कहा जाता है। रेखाचित्र गद्य में लिखी गई कोई छोटी कहानी नहीं है वरन, वह तो मनुष्य जीवन का गद्य है। वह तो मनुष्य को बाहर और भीतर से उनके सर्वांग में समझने और अध्ययन करने का प्रयत्न करता है।

रेखाचित्र तो हाथ के कैमरा के चलते हुए स्नेप होते हैं जो प्रकाश और छाया के माध्यम से कुछ निर्धारित मानव सत्यों का वर्णन करते हैं। शब्दचित्र, पहले शब्दचित्रों से भिन्न हैं-छोटे, चलने, जीवन्त! मैंने कहा हैंड कैमरा ने स्नैपशाट आलोचक ने उस दिन डाँटा-हाथीदांत पर की तस्वीरें। रेखाचित्र एक कला है, अतः उसमें जीवन की अनुकृति होने के साथ ही साथ निर्माण सौष्ठव भी होना चाहिए। रेखाचित्रकार एक खाका खींचकर जीवन को रेखाओं से बन्दी बनाने का प्रयत्न करता है, यदि ऐसा न किया जाय तो चित्र का निर्माण ही सम्भव न होगा। इसलिए यथार्थ पर आधारित होकर कलाकार उसके स्वरूप को निरखता और सार्थक बनाता है। जीवन का प्रवाह रोककर बाँधा नहीं जा सकता और उसे उसके समग्र रूप में ही ग्रहण किया जा सकता है, इसलिए रेखाचित्र में जीवन का सर्वाङ्गीण चित्रन आकार एकांकी चित्र ही आता है, हाँ, कैमरा द्वारा लिए हुए चित्र से उसमें विशिष्टता होती है। कैमरा के चित्र में केवल लम्बाई और चौड़ाई होती है किन्तु रेखाचित्र में तीसरा आयाम मोटाई भी होती है। अमरीका में नवीन विचारकों के एक मत विशेष के अनुसार कहा जाता है कि प्रकृति में प्राकृतिक प्रभावनों के फलस्वरूप अनेक चित्र बन जाते हैं। समुद्र के किनारे पड़े रेत पर और पहाड़ों की बड़ी-बड़ी चट्टानों पर अपने आप अनेक प्रकार के चित्र बन जाते हैं। इसी प्रकार समाज की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों के अनुसार साहित्यिक विधाओं का विकास और उद्गम होता है। मध्यकाल में जबकि सामन्तशाही द्वारा शासित समाज का ढाँचा अपने सभी उपाङ्गों को दृढ़ता से बाँधकर पिरामिड की तरह खड़ा था तो महाकाव्यों का विकास हो रहा था। सामन्तशाही के अन्त के साथ ही समाज के सभी अंग बिखर उठे थे अतः अनेक छोटी-छोटी साहित्य-विधाओं का विकास हुआ है। फलस्वरूप उनमें तथा वर्तमान

समाज–व्यवस्था में यथेष्ट सीमा तक साम्य है। दोनों में नियमों के बन्धन यद्यपि यथेष्ट हैं, फिर भी पर्याप्त स्वतन्त्रता है।[31]

रेखाचित्र साहित्य का विकास

वस्तुतः रेखाचित्र चरित्रांकन से सम्बन्धित होता है। चरित्रांकन के सन्दर्भ में प्रथम कलाकार यूनानी लेखक 'थियोफ्रेस्टस' था जिसने 'कैरेक्टर्स' नामक अपनी कृति में समाज के विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों के रेखांचित्र प्रस्तुत किये थे। बीसवीं शदी के तीसरे दशक के अन्तिम वर्षों से ही हिन्दी में रेखाचित्रों की धूम मची। पर इस विधा की ओर जन–मानस का ध्यान आकृष्ट करने का श्रेय 'हंस' और 'मधुकर' के विशेषांकों के हैं। सन् 1938 के 'हंस' के रेखाचित्र विशेषांक में अन्य भारतीय भाषाओं में लिखे रेखाचित्रों के साथ–साथ हिन्दी में लिखे गये 25 रेखाचित्र संकलित हैं। इन रेखाचित्रों की विषय–वस्तु साहित्यकार, पत्रकार, कवि, अध्यापक, कथाकार, लेखिकाएँ आदि हैं। सभी रेखाचित्र अपने–अपने क्षेत्र में प्रसिद्ध व्यक्तियों पर लिखे गये हैं।

'मधुकर' का रेखाचित्र अंक इस विधा को समृद्ध करने वाला दूसरा महत्वपूर्ण विशेषांक है। यह विशेषांक इस विधा के वरिष्ठ लेखन बनारसीदास चतुर्वेदी के सम्पादकत्व में 1946 में प्रकाशित हुआ। इस विशेषांक का वैशिष्ट्य इस बात में है कि सर्जनात्मक रचनाओं के साथ–साथ प्रारम्भ में एक सारगर्भित विकास मूलक भूमिका भी दे दी गई है।

हिन्दी रेखाचित्र का विकास मुख्यतः छायावादोत्तर युग में ही हुआ है। सर्वश्री पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, पं. श्रीराम शर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, डॉ. विनयमोहन शर्मा, प्रकाशचंद्र गुप्त, श्रीमती सत्यवती मलिक, डॉ. प्रेमनारायण टण्डन, सत्यजीवन वर्मा भारतीय, जगदीशचन्द्र माथुर, महेन्द्र भटनागर आदि इस विधा के कतिपय उल्लेखनीय हस्ताक्षर हैं।

रेखाचित्र में सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका रही है पं. बनारसीदास चतुर्वेदी की। इन्होंने संस्मरण तथा रेखाचित्र के क्षेत्र में जमकर काम किया। इन्होंने न केवल विशाल भारत का सम्पादन करते समय उसमें अनेक रेखाचित्रों का प्रकाशन किया अपितु मधुकर के रेखाचित्र विशेषांक का सम्पादन कर इस विधा को गतिमान बनाया।

चतुर्वेदी जी ने अपने दीर्घ जीवन में शताधिक रेखाचित्र लिखे हैं। 'हमारे अराध्य', 'रेखाचित्र', 'सेतुबंध' आदि शीर्षक से इनके अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। अंग्रेजी के प्रसिद्ध रेखाचित्रकार ए.जी. गार्डनर इनके आदर्श हैं। देश–विदेश के साहित्यकार, पत्रकार, समाजसेवी, क्रांतिकारी, राजनीतिज्ञ आदि का उद्यम साहस तथा दुर्लभ मानवीय गुणों का निरूपण इनकी रचनाओं का मूल कथ्य है। समाज के उपेक्षित, शोषित एवं

निर्धन पात्रों पर भी इन्होंने अनेक मार्मिक रेखाचित्र लिखे हैं। भाषा की सादगी तथा हास्य-व्यंग्य के पुट ने इनकी रचनाओं को मार्मिक तथा आकर्षक रूप दे दिया है। ये अपने रेखाचित्रों में यथास्थान पत्रों का समावेश भी करते चले गए हैं। संस्मरण तथा जीवनी शैली का बहुतायत से प्रयोग करने के कारण इनकी रचनाएँ प्रायः संक्षिप्ताकर नहीं रह पाई हैं। सच तो यह है कि इनकी रचनाओं में वैयक्तिकता का तत्व इतना अधिक रसा-बसा है कि वे प्रायः संस्मरणों के निकट पहुँच जाती हैं।

हिन्दी में शिकार साहित्य के प्रवर्तक पं. श्रीराम शर्मा ने अनेक प्रभावी रेखाचित्र भी लिखे हैं। 'बोलती प्रतिमा', 'प्राणों का सौदा', 'जंगल के जीव' तथा 'वे जीते कैसे हैं' में इनके प्रतिनिधि रेखाचित्र संकलित हैं। पं. श्रीराम शर्मा में सामान्य जनजीवन तथा जीव-जन्तुओं की प्रकृति को जानने-समझने की अद्भुत क्षमता थी। अतएव इनके रेखाचित्रों में जहाँ एक ओर जुल्म की आग में रात-दिन जलते तथा भूख की लपेटों में झुलसते किसानों का सजीव प्रत्यंकन है तो दूसरी ओर हरिण, बघेरा, घड़ियाल, शेर, हाथी, जंगली सूअर, बया, सियार आदि जंगली जीव-जन्तुओं के स्वभाव एवं रूपाकार को इस प्रकार रूपायित किया गया है कि उनका अन्तर्बाह्य साकार हो उठता है। जनपदीय शब्दों का प्रयोग करते हुए कथात्मक शैली के माध्यम से अभीष्ट विषय को हृदयस्पर्शी एवं मूर्त रूप प्रदान करने की कला में ये पूर्णतः कुशल हैं।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अनथक योद्धा तथा क्रान्तिकारी पत्रकार रामवृक्ष बेनीपुरी हिन्दी रेखाचित्रों के इतिहास में अपने अद्भुत शब्द-शिल्प के लिए प्रख्यात हैं। बनारसीदास चतुर्वेदी ने इनके संदर्भ में लिखा है, यदि हमसे प्रश्न किया जाए कि आज तक का हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ शब्द चित्रकार कौन है तो हम बिना किसी संकोच के बेनीपुरी जी का नाम उपस्थित कर देंगे।

'लालतारा', 'माटी की मूरतें', 'गेहूँ और गुलाब' तथा 'मील का पत्थर', बेनीपुरी जी की ऐसी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं जिनमें उनके प्रतिनिधि रेखाचित्र संकलित हैं। यदि 'लालतारा' क्रान्ति की लपटें उगलने वाले रेखाचित्रों के लिए प्रख्यात है तो 'माटी की मूरतें' अपनी पच्चीकारी के लिए। 'गेहूँ और गुलाब' में छोटे-छोटे गद्यकाव्यात्मक शब्दचित्र संकलित हैं। इनके बारे में स्वयं लेखक का कहना है, ये शब्दचित्र पिछले शब्दचित्रों से भिन्न हैं - छोटे, चलते, जीवंत। मैंने कहा - हैंडकैमरा के स्नेपशॉट। आलोचक ने उस दिन डाँटा.... हाथी दाँत पर की तसवीरें। 'मील का पत्थर' में रेखाचित्र के साथ-साथ संस्मरण भी दे दिए गये हैं।

बेनीपुरी जी ने अपनी रचनाओं में समाज के अनेक उपेक्षित पात्रों को सदा-सदा के लिए अमर कर दिया है। एक चतुर एवं पारखी जौहरी की तरह बेनीपुरी जी अपने

कथ्य को कलम की नोक पर कुछ इस तरह उभारते हैं कि वह एकदम जीवंत हो उठता है। यर्थार्थ के साथ कल्पना और भावुकता का समन्वय, हल्की-फुलकी, चुलबुली और निर्झर के समान वेगवती भाषा तथा विवरणात्मक, संस्मराणात्मक और नाटकीयता से परिपूण4 शैली इनके लेखन की कतिपय ऐसी उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं जो पाठक की स्मृति में सदा-साद के लिए अपना स्थान बना लेती हैं।

रेखाचित्र, संस्मरण और रिपोर्ताज के क्षेत्र में जमकर काम करनेवालों में कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का उल्लेखनीय स्थान है। इन्होंने अपने रेखाचित्रों को अक्षर चित्र कहा है। 'माटी हो गया सोना' में प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक राष्ट्रीय महापुरुषों एवं राष्ट्र-हित के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग कर देनेवाले शहीदों पर लिखे रेखाचित्र संकलित हैं तो 'दीपजले शख बजे' में चतुर्दिक बिखरी छोटी-छोटी घटनाओं को रेखाचित्र का रूप दिया गया है। प्रभाकर जी के रेखाचित्र आद्यंत भावुकता के रंग में रंगे हैं। वैयक्तिक अनुभव तथा दूसरे व्यक्तियों द्वारा व्यक्त की गई टिप्पणियों एवं सम्मतियों में ताल-मेल बिठाते हुए मानवीय सत्य का सहज उद्घाटन इनके रेखाचित्रों की निजी विशेषता है। समाज के निम्न वर्ग से सम्बद्ध किसी चरित्र को उभारते समय इनका लक्ष्य उन महानगुणों की खोज करना होता है जो उसे अनायास एक स्मृहणीय विशिष्टता प्रदान कर देते हैं। मनुष्य ही नहीं अपितु पशु-पक्षियों के साथ भी सहज आत्मीय संबंध स्थापित कर मानवीय सत्य के सहज उद्घाटन में ये पशु हैं। रोचक प्रारंभ, घटना-ऐक्य, स्पष्ट विश्लेषण एवं आद्यन्त सरल और प्रवाहपूर्ण भाषाशैली इनके लेखन की कतिपय उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

विनयमोहन शर्मा का अन्यतम स्थान है रेखाचित्रों का प्रणयन ही मुख्य रचनाक्षेत्र रहा है और रेखाचित्रों के मूलभूत सिद्धान्तों से परिचित भी हैं। रेखाएँ और रंग इनका उल्लेखनीय रेखाचित्र-संग्रह है। संग्रह की भूमिका में लेखक ने लिखा है कि रेखाचित्रों की रचना के लिए तीन चीजों की जरूरत होती है। ये तीन बाते हैं - 1) कैमरा या तूलिका चत्रि के समान शरीखयवों का विशद चित्रण, 2) स्वभाव की विशेषता को स्पष्ट करने वाले उसके कृत्य अथवा कृत्यों का आँकलन और 3) चित्र को सजीवता प्रदान करने के लिए देशकालानुसार भाषा-प्रयोग। इन सबके अतिरिक्त ये वस्तु-तथ्यों को मूर्त करने के निमित्त कल्पना-प्रवणता का होना भी जरूरी मानते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इनके रेखाचित्रों में ये सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं। इन्होंने मानवेतर विषयों पर भी अच्छे रेखाचित्र लिखे हैं। उदाहरणार्थ वृक्ष और एक चिड़िया में एकाकी वृक्ष को कथ्य के रूप में संकलित किया गया। है तो 'ब्लैकी' में एक कुत्ते को। नपे-तुले शब्दों, छोटे-छोटे वाक्यों और यत्र-तत्र हास्य - व्यंग्य की छीटों के माध्यम से ये पाठक का मन अनायास मोह लेते हैं।

रेखाचित्र तथा संस्मरण के तत्वगत अंतर को ध्यान में रखकर रेखाचित्रों की रचना करने वालों में प्रकाशचन्द्र गुप्त अग्रणी साहित्यकार हैं। रेखाचित्र, स्केच और नए स्के इनके उल्लेखनीय रेखाचित्र संग्रह हैं। रेखाचित्रों की तत्वगत विशेषताओं से भली-भाँति परिचित होने के कारण इनमें विषय से इधर-उधर भटकने की प्रवृत्ति नहीं मिलती। इनकी रचनाओं में आकारगत संक्षिप्तता का गुण भी विद्यमान है। इनके रेखाचित्रों पर विदेशी लेखकों, विशेषतः ए.जी. गार्डनर के रचना-शिल्प का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। निर्जीव वस्तुओं एवम् स्थानों पर प्रभावी रेखाचित्र लिखने में इन्हें कमाल हासिल है। शैली-शिल्प की दृष्टि से इनकी विशेषता है सरल से सरल शब्दों तथा छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग। सच तो यह है कि इनके रेखाचित्रों में श्रेष्ठ रेखाचित्रों की सभी विशेषताएँ अनुस्यूत हैं। श्रीमती सत्यवती मलिक इस विधा की ऐसी लेखिका हैं जिनकी रचनाओं को बनारसीदास चतुर्वेदी तथा प्रकाशचंद्र गुप्त की शैली के मिश्रित रूप में संज्ञा दी जाती है। 'अमिट रेखएँ' तथा 'अमर क्षण' इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। 'कैदी' शीर्षक रेखाचित्र को पढ़कर तो सहसा चेखव की शैली की याद आ जाती है। सहृदयता तथा संक्षेपाकार रचना-विधान इनकी शैलीगत विशेषता है।

डॉ. प्रेमनारायण टण्डन ने अपनी कृति 'रेखाचित्र' में कई मर्मस्पर्शी रेखाचित्र लिखे हैं। कूकी, रोगी, अफसर, हिन्दूनारी, आदि इस संग्रह की उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। डॉ. टण्डन के रेखाचित्र समाज के खोखलेपन को उजागर करते हैं। चलती हुई भाषा, प्रवाहपूर्ण शैली और नातिदीर्घ आकार इनकी शैलीगत विशेषताएँ हैं।

प्रकाशचन्द्र गुप्त के ही समान संक्षिप्ताकार रेखाचित्र लिखनेवाले सत्यजीवन वर्मा 'भारतीय' का प्रतिनिधि संग्रह है 'एलबम' अथवा शब्दचित्रावलि। श्री भारतीय एक कथाकार भी हैं और परिणामतः इनकी ये रचनाएँ यदा-कदा कहानी का सा भ्रम भी पैदा करती हैं।

हिन्दी नाट्य साहित्य के सुपरिचित हस्ताक्षर जगदीशचन्द्र माथुर हिन्दी का रेखाचित्र के इतिहास में भी महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। इनके रेखाचित्रों का प्रतिनिधि संग्रह है 'दस तसवीरें' जिसमें कवि, संगीतज्ञ, अभिनेता, अध्यापक, प्रशासक आदि ऐसे दस व्यक्तियों के शब्द-चित्र हैं जिन्होंने इनके जीवन को पर्याप्त प्रभावित किया है। इन्होने अपने रेखाचित्रों को 'पेन पोर्ट्रेट' कहा है और इस बात पर बल दिया है कि इन्हें संस्मरण नहीं कहा जाना चाहिए क्योंकि इनमें संस्मरण शैली का हल्का-फुल्कापन नहीं है। इस कृति में संकलित व्यक्तिचित्रों में लेखक के जीवन-निर्माता अध्यापक अमरनाथ झा का व्यक्तिचित्र सर्वोत्तम है। ये सभी व्यक्तिचित्र श्रद्धापूर्वक लिखे गए हैं, ऐसी श्रद्धा के साथ जिसमें भाषा-शैली का प्रयोग इनकी शैलीगत विशेषता है।

छोटे-छोटे मार्मिक रेखाचित्र लिखने वाले लेखकों का लेखा-जोखा करते समय महेन्द्र भटनागर का नाम विस्मृत नहीं किया जा सकता। इनका एतद्विषयक प्रतिनिधि संकलन है 'विकृत रेखाएँ धुँधले चित्र' सामाजिक विकृतियों को उजागर करते हुए बुराइयों पर आघार इनकी रचनाओं का मूल कथ्य है।

इन प्रमुख रचनाओं के अतिरिक्त बहुत से रेखाचित्र निबंध, यात्रावृत्त आदि विधाओं के संबद्ध कृतियों में भी संकलित हैं। अभिनन्दन ग्रंथों का अनुशीलन करने पर उनमें भी कतिपय रेखाचित्र मिल जाएंगे। पत्र-पत्रिकाओं में भी समय-समय पर रेखाचित्र प्रकाशित होते रहते हैं।

हिन्दी रेखाचित्रों का समग्ररूपेण अध्ययन करने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अधिकांश लेखकों की मनोवृत्ति संस्मरणमूलक रेखाचित्रों के प्रणयन की ओर ही रही है, विशुद्ध रेखाचित्रों के प्रणयन की ओर साहित्यकारों का ध्यान अधिक नहीं गया है। दूसरी बात यह है कि साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करनेवाले प्रसिद्ध व्यक्तियों में संबद्ध रेखाचित्र तो प्रभूत मात्र में लिखे गए हैं।

इन सभी रेखाचित्रकारों ने अपने अनेक उत्कृष्ट रेखाचित्रों द्वारा हिन्दी रेखाचित्र साहित्य को समृद्ध करने में अविस्मरणीय योगदान दिया है।[34]

अतः आधुनिककाल में रेखाचित्र-विधा का बहुमुखी विकास प्रभासमान है। आज राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक आदि सभी प्रकार के रेखाचित्र लिखे जा रहे हैं।[35]

जीवनी

किसी व्यक्तिविशेष के जीवन वृत्तान्त को जीवनी कहते हैं। जीवनी का अंग्रेजी पर्याय 'लाइफ' अथवा 'बायोग्राफी' है।[36]

अर्थ-परिभा एवं स्वरूप - 'जीवन' शब्द जहाँ व्यक्ति-जीवन की बाह्य, घटनाओं को उद्घाटित करता है, वहाँ चरित्र उसकी आन्तरिक विशेषताओं को प्रकट करता है। इसी प्रकार 'जीवनी' का आशय है - 'जीवन चरित्र'। जीवन चरित का अभिप्राय - जीवनवृत्त, जीवन वृतान्त और जीवन चरित्र है। इसमें किसी व्यक्ति विशेष के बाह्य एवं आन्तरिक जीवन का प्रकाशन होता है। जीवनी को जीवन चरित्र या जीवन चरित भी कहा जाता है।

पाश्चात्य विद्वान जान्सन के अनुसार - "जीवनीकार का लक्ष्य जीवन की उन घटनाओं और क्रिया-कलापों का रजक वर्णन करना होता है, जो व्यक्ति विशेष की बड़ी से बड़ी महानता से लेकर छोटी से छोटी घरेलू बातों तक से सम्बन्धित होती हैं।"

यह परिभाषा बहुत पुरानी है। आज की साहित्यिक जीवनी विधा के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करने में असमर्थ सी है।

पाश्चात्य विद्वान प्रो. शिप्ले के मतानुसार – ''जीवनी किसी व्यक्ति विशेष की जीवन–घटनाओं का विवरण है। अपने आदर्श रूप में वह प्रयत्न पूर्वक लिखा गया इतिहास है जिसमें व्यक्ति–विशेष के सम्पूर्ण जीवन या उसके किसी अंश से सम्बन्धित बातों का विवरण मिलता है। यह आवश्यकताएँ उसे एक साहित्यिक विधा का रूप प्रदान करती है।''

प्रो. शिप्ले की यह परिभाषा भी अस्पष्ट है।

जीवनी के स्वरूप और अधिक स्पष्ट करते हुए डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने लिखा है – ''जीवन–कथा वह साहित्यिक विधा है जिसमें भावुक कलाकार किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन या उसके जीवन के किसी भाग का वर्णन परम सुपरिचित ढंग से इस प्रकार व्यक्त करता है कि उस व्यक्ति की सच्ची जीवन–गाथा के साथ–साथ कलाकार का हृदय भी मुखरित हो उठता है।''

अतः स्पष्ट है कि किसी भी उल्लेखनीय महत्वपूर्ण महामानव के जीवन–चरित को जब लेखक तटस्थ भाव से द्रष्टा बनकर जिस विधा में व्यक्त करता है, उसे जीवनी कहते हैं। दूसरे शब्दों में किसी व्यक्ति द्वारा लिखित महान पुरुषों को क्रमबद्ध जीवन परिचय को जीवनी कहते हैं। रसात्मक अभिव्यक्ति होती है। व्यक्ति की छोटी से छोटी बात भी उपेक्षणीय नहीं होती, क्योंकि वही उसके व्यक्तित्व की प्रकाशिका होती है।

जीवनी में घटनाएँ यथार्थ और वास्तविक होती हैं। लेखक उनके सजाने, सँवारने और संयोजन में अपनी उर्वर कल्पना शक्ति का उपयोग करता है। संयोजन और व्यवस्थापन में जो एक सूत्रता रहती है, वही कलात्मक होती है और वही जीवनी साहित्य को इतिहास से भिन्न कर देती है।[37]

साहित्यिक विधाओं के अन्तर्गत जीवनी साहित्य का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इस विधा में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिवेश से प्रभावित महामानवों, मनीषियों और कलाकारों का जीवन–वृत वर्णित होता है। यह लेखन–कला का सबसे सुकोमल और सहानुभूतिपूर्ण स्वरूप है। साहित्य की यह विधा यद्यपि प्राचीन है तथापि इसका वास्तविक विकास आधुनिक युग में ही हुआ। जैसे कि डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है – ''आधुनिक युग में वैज्ञानिक और बौद्धिक जीवन–दृष्टि के विकास के साथ ही जीवनी साहित्य लिखने की परम्परा पल्लवित हुई और अब तो जीवनी–साहित्य हिन्दी गद्य की एक पृथक विधा के रूप में मान्य है।''[38]

जीवनी साहित्य का विकास

इस विधा का उद्‌भव भारतेन्दु–युग से माना गया है। स्वयं भारतेन्दु द्वारा लिखित जीवनियाँ 'चरितावली', 'बादशाह दर्पण', 'उदय पुरोदय' और 'बूँदी का राजवंश' में संकलित है। उन्होंने आदि साहित्यकारों (कालिदास, जयदेव) प्रमुख भक्तों एवं सन्तों (सूरदास, रामानुजाचार्य, शंकराचार्य, वल्लभाचार्य), मुगल सन्तों, बादशाहों, राजाओं एवं अंग्रेज शासकों की जीवनियाँ लिखीं। इस युग के अन्य जीवनी लेखकों में देवी प्रसाद मुँसिफ महत्वपूर्ण हैं, जिन्होंने अनेक ऐतिहासिक जीवनियाँ लिखी जिनमें प्रमुख हैं – 'राजा मालदेव का जीवन चरित्र', 'महाराज मानसिंह कच्छ वाले', 'अमीर का जीवन चरित्र', 'उदयसिंह महाराजा', 'अकबरनामा', 'जसवंत सिंह' आदि। काशीनाथ खत्री ने 'हिन्दुस्तान की अनेक रानियों का जीवन–चरित्र' तथा 'भारतवर्ष की विख्यात स्त्रियों के जीवन चरित्र' कार्तिक प्रसाद खत्री ने 'अहिल्याबाई का जीवन चरित्र', 'छत्रपति शिवाजी का जीवन चरित्र', 'मीराबाई का जीवन चरित्र' आदि तथा रमाशंकर व्यास ने 'नेपोलियन बोनापार्ट का जीवन चरित्र' की रचना कर जीवनी साहित्य को समृद्ध किया है। ईसाई मिशनरियों ने भी विदेशी चरित्रों के अन्तर्गत 'विक्टोरिया महारानी का वृतांत' तथा 'सिकन्दर महान का वृतान्त' प्रकाशित कर योगदान दिया है।

इनके अतिरिक्त गोपाल शर्मा शास्त्री, प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, गोकुलनाथ शर्मा, बलभद्र मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास आदि ने भी सहयोग दिया है।

द्विवेदी युग राष्ट्रीय चेतना के प्रसार का काल था। रूढ़िवादिता के स्थान पर धीरे–धीरे प्रगतिशील दृष्टिकोण पनप रहा था। इस युग में जीवनी–साहित्य का तीव्र गति से विकास हुआ। स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जीवनियाँ लिखीं और अन्य साहित्यकारों को भी प्रोत्साहित किया। उनकी लिखित जीवनियों का संकलन 'प्राचीन पंडित और कवि', सुकवि संकीर्तन, चरिच चर्चा आदि में हुआ है। चिम्मनलाल वैश्य, दयाराम, रामविलास सारदा तथा अखिलानंद शर्मा द्वारा स्वामी दयानंद पर लिखी गई जीवनियों का आर्य धर्म के प्रचार–प्रसार की दृष्टि से महत्व है।

इस युग की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इस युग में कार्यरत राष्ट्रीय महापुरुषों के जीवन पर भी लेखनी चलाई गयी, जिसमें प्रमुख हैं –

लोकमान्य तिलक का चरित्र (माता सेवक), मदनमोहन मालवीय (बृजबिहारी शुक्ल), महात्मा गोखले (नन्दकुमार देव शर्मा), धर्मवीर गाँधी (सम्पूर्णानन्द), तपोनिष्ठ महात्मा अरविन्द घोष (पारसनाथ त्रिपाठी) आदि। ऐतिहासिक चरित्रों तथा विदेशी महापुरुषों के अतिरिक्त महान नारियों की जीवनियां भी इस युग में लिखी गई।

छायावाद युग में भी राष्ट्रीय आन्दोलन की सक्रीयता एवं गतिशीलता के कारण

राष्ट्रीय महापुरुषों के जीवन पर ही अधिक लिखा गया है। इस योग में सबसे अधिक जीवनियों में प्रमुख हैं – देशभक्त लाला लाजपत राय (नवजादिक लाल श्रीवास्तव) बाल गंगाधर तिलक (ईश्वरीप्रसाद शर्मा) गाँधी कौन है (रामनरेश त्रिपाठी) गाँधी गौरव (नरोत्तमदास व्यास) चम्पारन में महात्मागाँधी (डॉ. राजेन्द्र प्रसाद), पं. जवाहरलाल नेहरू (व्यथि हृदय) चन्द्रशेखर आजाद (मन्मथनाथ गुप्त) आदि। ऐतिहासिक चरित्रों से सम्बद्ध जीवनियों में पृथ्वीराज चौहान (रामनरेश त्रिपाठी) राणा प्रताप सिंह (चन्द्रशेखर पाठक) शिवाजी (सुखसंपत राय भंडारी), चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (गंगाप्रसाद मेहता) दुर्गादास (प्रेमचन्द) आदि प्रमुख हैं।

प्रसिद्ध महिलाओं की जीवनियाँ इस प्रकार हैं – सच्ची देवियाँ (शिवव्रत लाल बर्मन) विद्योत्तमा (मनोरमा बाई) आर्य महिला रत्न (जहूर बख्श) अहिल्याबाई (जटाधर प्रसाद शर्मा 'विमल') रमणीनवरत्न (जगन्नाथ शर्मा) आदि।

छायावादोत्तर युग में जीवनी–लेखन का कार्य चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। विविध क्षेत्रों में लोकप्रिय व्यक्तियों की जीवनियाँ भी लिखी जाने लगीं।

साहित्यकारों पर लिखी गयी जीवनियों के अन्तर्गत शिवरानी देवी की 'प्रेमचन्द घर में' तथा अमृतराय की 'कलम का सिपाही' प्रेमचन्द के बहुमुखी व्यक्तित्व की विशेषताओं को उजागर करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। रामविलास शर्मा की 'निराला की साहित्य साधना' (दो भाग), विष्णु प्रभाकर की 'आवारा मसीहा' शान्ति जोशी की 'सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य' जैमिनी कौशिक बरुआ की 'माखनलाल चतुर्वेदी' मदन गोपाल की 'कलम का मजदूर' गंगा प्रसाद पाण्डेय की 'महाप्राण निराला' आदि कृतियाँ साहित्यिक दृष्टि से विशेषोल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त श्याम नारायण कपूर–कृत 'भारतीय वैज्ञानिक', राहुल सांकृत्यायन–कृत 'नये भारत के नये निर्माता', 'हरिमोहन शर्मा कृत 'भारतीय क्रिकेट के नवरत्न, डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त–कृत 'भारत की महान आत्माएँ', योगराज थानी–कृत लोकनायक जयप्रकाश नारायण इसलिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनके माध्यम से विविध क्षेत्रों में प्रख्यात एवं प्रेरक व्यक्तित्वों का परिचय मिलता है।[39]

इस प्रकार हिन्दी जीवन–साहित्य सौ वर्ष से अधिक की विकास यात्रा पूरा कर चुका है। इस अवधि में हजारों जीवनियों ने इस साहित्यिक विधा को समृद्ध किया है। आज 'विश्व के महान वैज्ञानिक', 'विश्व के महान साहित्यकार', 'विश्व की प्रख्यात महिलाएं', नाम से छोटी–छोटी बालकों और किशोरों के लिए जीवनियाँ लिखी जा रही हैं। इधर राजकमल एण्ड सन्स आत्माराम एण्ड सन्स तथा हिन्दी प्रचारक संस्थान ने विश्व के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों, अविष्कारकों और खोजियों की कुछ किशोरोपयोगी जीवनियाँ प्रकाशित

की हैं। हिन्दी में लिखित कुछ जीवनियों का अनुवाद अनेक विदेशी तथा भारतीय भाषाओं में हो चुका है। बंगलाभाषा के सुप्रसिद्ध साहित्यकार शरद्चन्द्र की विष्णु प्रभाकर लिखित जीवनी 'आवारा मसीहा' इतनी प्रामाणित और लोकप्रिय हुई कि बंगला भाषा में लिखित कोई भी जीवनी इसकी बराबरी नहीं कर पाती। उन्होंने शरद्चन्द्र के जीवन से सम्बद्ध सम्पूर्ण उपलब्ध सामग्री का अनुशीलन करके उनके प्रतिभा को इसमें उद्घाटित किया है। वस्तुतः इस कृति से शरद्चन्द्र की प्रतिभा का पुर्नसृजन हुआ है।

इस तरह हिन्दी जीवन–साहित्य का भविष्य पर्याप्त आशाजनक और समुज्ज्वल है।[40]

आत्मकथा

जीवनी साहित्य की भाँति आत्मकथा भी हिन्दी गद्य साहित्य की एक सरस संस्मरणात्मक विधा है। संस्मराणात्मक होते हुए भी यह विधा संस्मरण साहित्य से भिन्न है। यह भी हिन्दी की आधुनिक नवीन विधाओं में एक मुख्य विधा है। हिन्दी साहित्य में आत्मकथा का प्रचलन अन्य भाषाओं की अपेक्षा बहुत कम है। तथ्य–विवेचन के संदर्भ में हिन्दी की अन्य विधाओं की तुलना में आत्मकथा को अधिक पुष्ट एवं प्रामाणिक माना जाता है। जब कोई व्यक्ति स्वयं अपने बीते जीवन का व्यवस्थित वर्णन लिखता है, तब आत्मकथा की सृष्टि होती है।

आत्मकथा का आशय – आत्मकथा का शाब्दिक अर्थ है – 'अपनी कथा' जिस विधा में लेखक स्वयं ही अपना जीवन–वृत्त प्रस्तुत करे, उसे 'आत्मकथा' कहते हैं। अर्थात आत्मकथा ऐसी जीवन–कथा है, जो उसी व्यक्ति द्वारा लिखी जाती है, जिसके जीवन–वृत्त का वर्णन अभीष्ट है। दूसरे शब्दों में अपने विषय में लिखे गये संस्मरणों का अधिक व्यवस्थित और विस्तृत रूप ही आत्मकथा है। इसे कुछ विद्वान, 'आत्मचरित' या 'आत्मचरित्र' भी कहते हैं।

आत्मकथा में लेखक निष्पक्ष भाव से अपने गुण–दोषों की सम्यक अभिव्यक्ति करता है और अपने चिन्तन, संकल्प–विकल्प, उद्देश्य एवं अभिप्राय को व्यक्त करने हेतु जीवन के अनेक महत्वपूर्ण पक्षों को उद्घाटित करता है। वैयक्तिक जीवन के ही खट्टे–मीठे अनुभवों को क्रमानुसार बाह्य सामग्रियों तथा स्मृति के आधार पर लिपिबद्ध करता है।[41]

श्री राजनाथ शर्मा के अनुसार आत्मकथा दो उद्देश्य से लिखी जाती है –''एक आत्म–निर्माण, आत्म–परिक्षण, अतीत की स्मृतियों का मोह या विश्व के व्यापक जटिल विस्तार में स्वयं को जानने या स्वयं की स्थिति का अन्वेषण करने के उद्देश्य से। दो स्वयं के अनुभवों का लाभ अन्य लोग भी उठा सकें इस उद्देश्य से।''

यदि आत्मकथा–लेखक इमानदारीपूर्वक आत्मकथा लिखता है तो उसके व्यक्तित्व के

गुणों–अवगुणों के सच्चे परिचय के साथ–साथ समकालीन व्यक्तियों के बारे में जानकारी मिलती है। तथा तत्कालीन परिवेश का यथार्थ स्वरूप भी प्रस्तुत होता है।[42]

हिन्दी आत्मकथा का विकास – हिन्दी का 'आत्मकथा' साहित्य लगभग 400 वर्ष पुराना है। प्राचीन आत्मकथा बनारसीदास जैन रचित अर्द्धकथा (1941ई.) है। इसके सम्बन्ध में सम्पादक का कहना है कि ''कदाचित समस्त आधुनिक आर्य भाषा–साहित्य में इससे पूर्व कोई आत्मकथा नहीं है।'' डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने भी आत्मकथा–लेखन का प्रारम्भ यहीं से माना है। उनका कथन है कि ''आत्मकथा लिखने वालों में जिस निस्पक्ष और तटस्थ दृष्टि की आवश्यकता होती है, वह निश्चय ही बनारसीदास में थी।''

हिन्दी आत्मकथा का जन्म और विकास भी गद्य की अन्य विधाओं की भाँति वस्तुतः भारतेन्दु–युग से ही होता है।

भारतेन्दु–युग – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। अधिकांश विद्वानों द्वारा प्रथम आत्मकथा–लेखन का श्रेय भारतेन्दु को ही दिया जाता है। उन्होंने 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' नामक आत्मकथा लिखी जिसमें उनकी यौवनकालीन रोचक कथात्मक घटनाएँ निरूपित हैं किन्तु यह कृति अपूर्ण है। अम्बिकादत्त व्यास ने 'निजवृत्तान्त' नामक आत्मकथा लिखी। स्वामी श्रद्धानन्द कृत 'कल्याण–पथ का पथिक' आदि प्रकाश में आयीं। इस युग की भाषा शिथिल है, पर तथ्यपरक स्पष्टता उत्कृष्ट है।

द्विवेदी युग – भारतेन्दु जी के बाद आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका में अपनी 'अधूरी कहानी' प्रकाशित करायी। उनके परवर्ती सम्पादकों में पं. देवीदत्त शुक्ल, पदुमलाल पुन्नलाल बख्शी ने आत्मकथाएँ लिखीं थीं। बाबू श्यामसुन्दरदास द्वारा लिखित 'मेरी आत्म कहानी' एक श्रेष्ठ आत्मकथा है। इस सम्बन्ध में डॉ. हरदयाल का कथन है – श्यामसुन्द दास की मेरी आत्म–कहानी सन 1941 में प्रकाशित हुई। यह बड़ी सुगठित और समृद्ध आत्मकथा है। इसी युग में जयशंकर प्रसाद ने पद्य में और मुंशी प्रेमचन्द ने गद्य में 'मेरा जीवन–प्रवाह' नामक आत्मकथा लिखी। इसी युग में डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ने राजनीतिक आत्मकथा लिखी। भाई परमानन्द ने 'आप बीती' और श्री रामविलास शुक्ल ने भी मैं क्रान्तिकारी कैसे बना आत्मकथाएँ लिखीं। वस्तुतः ये सभी आत्मकथाएँ केवल लेखकों के जीवनवृत्त को ही नहीं बतातीं, वरन् तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी अभिज्ञान कराती हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर युग – द्विवेदी के बाद स्वातन्त्र्योत्तर युग में आत्मकथा का बहुमुखी विकास हुआ। स्वाधीन भारत में प्रकाशित प्रथम उल्लेखनीय आत्मकथा यशपाल रचित 'सिंहावलोकन' है। इसमें क्रान्तिकारियों की आत्मकथा की मार्मिकता दर्शनीय है। इसके बाद पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'जी ने अपने 20 वर्षों की कथा को निष्पक्ष, पर कलात्मक ढंग से प्रस्तुत

किया है। सेठ गोविन्ददास रचित 'आत्म-निरीक्षण', तीन भाग, आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत 'मेरी आत्म-कहानी', वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'अपनी कहानी' आदि इस विषय की महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। इधर एक दशक के अन्तराल में सबसे महत्वपूर्ण आत्मकथा डॉ. हरिवंशराय बच्चन की है जो चार खण्डों में प्रकाशित है। 1) क्या भूलूँ क्या याद करूँ, (2) नीड़ का निर्माण फिर, (3) बसेरे से दूर और (4) दश-द्वार से सोपान तक। चार खण्डों में प्रकाशित हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा स्वयं उन्हीं के शब्दों में एक स्मृति-यात्रा-यज्ञ है।

डॉ. बच्चन की आत्मकथा के अतिरिक्त डॉ. देवराज उपाध्याय कृत 'यौवन के द्वार पर राजकमल चौधरी कृत 'भैरवी-तन्त्र', डॉ. रामविलास शर्मा कृत 'घर की बात', शिवपूजन सहाय कृत 'मेरा जीवन', कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', कृत 'तपती पगडंडियों पर पद-यात्रा', फणीश्वरनाथ रेणु कृत 'आत्मपरिचय', डॉ. नगेन्द्र कृत 'अर्धकथा', अमृतलाल नागर कृत 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान' आदि आत्मकथाएँ विशेष रूप से चर्चित हैं।[43]

स्वातंत्र्योत्तर युग में न केवल परिमाण की दृष्टि वरन स्तर और शिल्प की दृष्टि से भी श्रेष्ठ आत्मकथाओं की रचना हुई इसके द्वारा साहित्यकारों तथा महापुरुषों की जीवन सम्बन्धी पाठकों की जिज्ञासा का सहज समाधान हो जाता है। वे उनकी आत्मनिरीक्षण और आत्मविश्लेषण की शक्ति से तो परिचित होते ही हैं उनके जीवन-संघर्षो को पढ़कर प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझते हुए आगे बढ़ने एवं कर्म करने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। ''ये आत्मकथाएँ, आत्मचरित लेखक की आत्मानुभूति एवं आत्मरंग से इतनी रंजित हैं कि पाठक पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ जाती हैं, साथ ही लेखक के जीवन-दर्शन से भी पाठकों को प्रभावित करती हैं और यह प्रेरणा देती हैं कि चाहें तो अपने जीवन को भी तदनुरूप सशक्त और समुन्नत बना सकते हैं।''[44]

पत्र

अर्थ - पत्र शब्द संस्कृत भाषा का है। पत्र धातु में वृत प्रत्यय जोड़ने से बना है। पत्र धातु का शाब्दिक या मूल अर्थ है। गिरना। पर हिन्दी में पत्र शब्द का प्रयोग दैनिक साप्ताहिक पाक्षिक पत्रों के लिए रूढ़ हो गया है। इसके अतिरिक्त अपने स्वजनों, परिचित लोगों, इष्ट-मित्रों आदि को भेजे जानेवाले पत्रों से है। अंग्रेजी में पत्र के लिए लेटर शब्द का प्रयोग किया गया है। यह शब्द लेटिन भाषा के लिट्रा धातु से बना है। इसका अर्थ वर्णमाला का अक्षर लिखना आदि है। आगे चलकर पत्र शब्द संदेश-सम्प्रेषण के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा।

परिभाषा - डॉ. माजदाप्रसाद के अनुसार एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के पास जो व्यक्तिगत

संदेश भेजता है उसे पत्र कहा जाता है। इस प्रकार पत्र एक ऐसा लेख है जो दूर रहनेवाले किसी व्यक्ति को भेजा जाता है। अंग्रेजी शब्दकोश में पत्र की परिभाषा इस प्रकार है। दूरस्थ व्यक्ति को वैयक्तिक वृत्तान्त लिखकर प्रेषित किया गया लेख ही पत्र लिखवाता है।

विशेषताएँ – एक आदर्श या अच्छे पत्र में सामान्यतः निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए–

1. पत्राङ्कों का समुचित समावेश
2. भाषा–शैली की सहजता एवं सरलता
3. आत्मीयता
4. वैचारिक क्रमबद्धता
5. सजावट एवं सुन्दरता
6. सारगर्भिता[45]

महत्व – पत्र हार्दिक अनुभूतियों का वाहक है। पत्र लिखने वाला जिन अनुभूतियों को प्रेषित करता है, पत्र प्राप्तकर्ता उन अनुभूतियों को तदनरूप ही ग्रहण करता इस प्रकार पत्र मानव की सहज अनिवार्य अभिव्यक्ति है। वह अपनी हर्ष–विषाद युक्त भावनाएँ पत्र के माध्यम से ही उस व्यक्ति तक पहुँचाता है, जो उसके हृदय की बात समझ सकता है। इस तरह पत्र की प्रमुख विशेषताओं में वैयक्तिकता, सहजता, भावात्मकता, हार्दिकता के साथ–साथ अनौपचारिकता व घनिष्ठता भी हैं। पत्रों का महत्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि अनौपचारिक होने के कारण लेखक व्यक्तित्व के अनेक पहलू उजागर होते हैं। पत्र–लेखक भी एक विशिष्ट कला है। इस कारण आज इस कला से संबंधित अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। व्यक्तिगत होते हुए भी इसलिए महत्वपूर्ण हो जाते हैं क्योंकि उनके माध्यम से दूसरों को भावों और विचारों सम्बन्धी नयी जानकारी मिलती है। साहित्यिक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति के पत्रों में उसकी सहजता प्रतिभा को स्पष्ट दर्श होते हैं। उसकी विशिष्ट शैली, संप्रेषण क्षमता, अनुभूति की सत्यता और गहनता, उसकी भाषा सभी से उसके व्यक्तित्व की पृथक विशेषताओं का आभास मिलता है।[46]

हिन्दी पत्र–साहित्य का विकास

हिन्दी का पत्र–साहित्य गद्य की अन्य विधाओं की तुलना में अल्पविकसित है। इसका कारण यह है कि पत्र–लेखक आवश्यकता से अधिक संकोची और अन्तर्मुखी स्वभाव का होता है। वह आत्म प्रकाशन से बचता है। अर्थात वह स्वयं को समाज के सामने लाना नहीं चाहता। पत्र–साहित्य के विकास इतिहास को हम निम्नलिखित ढंग

से देख सकते हैं[47] –

द्विवेदीयुगीन पत्र–साहित्य –महात्मा मुंशीराम ने सन् 1904 में स्वामी दयानन्द सरस्वती सम्बन्धी पत्रों का संकलन किया। यह आलोच्य युग का ही नहीं समूचे हिन्दी–साहित्य में पहला प्रकाशित पत्र–संग्रह है। इसके उपरान्त इसी युग में पं. भगवदत्त द्वारा स्वामी दयानन्द के व्यक्तित्व को उजागर करने वाला, उनकी चिन्तन शक्ति तथा दूरदर्शित को व्यक्त करने वाला पत्र संग्रह ऋषि दयानंद का पत्र व्यवहार प्रकाशित किया गया।[48]

बैजनाथ सिंह विनोद ने आचार्य किशोरी दास बाजपेयी ने कुछ साहित्यकारों के पत्रों को साहित्यिक पत्र शीर्षक नाम से प्रकाशित किया। बनारसीदास चतुर्वेदी के पास साहित्यकारों के पत्रों का सबसे बड़ा भण्डार था। उन पत्रों में राजनेताओं, पत्रकारों, स्वतंत्रता–सेनानियों के भी पत्रों का संग्रह है। उन्होंने पदमसिंह शर्मा के पत्र नाम से एक पत्र–संग्रह प्रकाशित किया जिसमें पारसनाथ सिंह, वियोगी हरि, हरिशंकर शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि के नाम लिखे गये पत्रों का संकलन है।

पूर्व स्वातन्त्रय–युगीन पत्र–साहित्य

द्विवेदीयुग की तुलना में इस युग में पत्र साहित्य के विकास की गति में तीव्रता आयी। प्रभाकर माचवे ने जैनेन्द्र जी के पत्रों को जैनेन्द्र जी के विचार नाम से प्रकाशित किया प्रसाद, पंत, निराला आदि कवियों के पत्रों का भी ऐतिहासिक महत्व है। निराला जी के पत्रों को डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला की साहित्य साधना के तृतीय खण्ड में प्रकाशित कराया है। पंत जी के प्राप्त पत्रों को हरिवंशराय बच्चन एवं निरंकारदेव सेवक ने पंत के सौ पत्र बच्चन के नाम शीर्षक से प्रकाशित करवारया है। जानकी वाल्लभशास्त्री ने निराला के पत्र जानकी वल्लभ शास्त्री नाम से प्रकाशित किया है।

स्वातन्त्रयोत्तर–युगीन पत्र–साहित्य

इस युग में पत्र–साहित्य का पूर्ण रूप से विकास हुआ। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के कुछ पत्र–पृथ्वी पुत्र में प्रकाशित हुए हैं तथा कुछ का प्रकाशन श्री वृन्दावन दास ने डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के पत्र नाम से प्रकाशित किया है। श्री वृन्दावन दास जी ने बनारसी दास चतुर्वेदी के पत्रोको डॉ. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र नाम से प्रकाशित कराया।

अमृतराय ने अपने पिता प्रेमचन्द के पत्रों को खोजबीनकर प्रेमचन्द : चिट्ठी – पत्री भाग 1 और भाग 2 के रूप में प्रकाशित किया है। डॉ. अम्बा प्रसाद सुमन द्वारा लिखे गये पत्रों का एक संकलन प्रकाशित हुआ है। सन् 1992 में डॉ. रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के मध्य हुए 56 वर्ष पत्र व्यवहारका संकलन मित्र संवाद नाम से प्रकाशित हुआजो आधुनिक युग के पत्र साहित्य में एक क्रान्तिकारी उपादान है। यह

संकलन पत्र–साहित्य का अमूल्य दस्तावेद सिद्ध हुआ है।

साहित्य, राजनीति आदि विभिन्न क्षेत्रों की महान विभूतियों से सम्बद्ध ग्रंथों में भी पत्र साहित्य का अमूल्य भण्डार संकलित है। यथा – डॉ. शिवप्रसाद सिंह द्वारा सम्पादित शान्ति निकेतन से शिवालिक तक में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा विभिन्न साहित्यकारों को लिखे गये जिन पत्रों का संकलन किया है उनसे आचार्य द्विवेदी की अभिरुचियों और विचारधारा का पता तो लगता ही है, साथ ही वे उनकी साहित्य–यात्रा के विभिन्न सोपानों को भी प्रकट करते हैं।

हिन्दी पत्र–साहित्य के विकास में नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सरस्वती माधुरी, धर्मयुग, ज्ञानोदय, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि ने भी महत्पूर्ण योगदान दिया है। राष्ट्रवाणी के मुक्तिबोध–स्मृति अंक में गजानन माधव मुक्तिबोध सम्बन्धी जिन पात्रों का संकलन सम्पादन किया गया है, वे मुक्ति बोध के काव्य की रचना–प्रक्रिया तथा उनकी अभावमयी जीवन–गाथा पर प्रकाश डालते हैं।

इसी तरह लगभग सभी पत्रिकाओं समाचार पत्रों में आपका पत्र मिला चिट्ठी–पत्री, पत्र–प्रसंग आदि स्तम्भों के अन्तर्गत पाठकों के पत्र प्रकाशित होते रहते हैं जिनमें साहित्य, समाज, धर्म, राजनीति आदि से सम्बद्ध विविध समस्याओं के विषय में जनता के विचारों की अभिव्यक्ति रहती है।

इस प्रकार, आज साहित्यिक पत्रों का भविष्य परमोज्ज्वल है। विद्वानों और साहित्यकारों के पत्रों के संकलन और सम्पादन का और अधिक प्रयास करना आवश्यक है।[49]

रिपोर्ताज

रिपोर्ताज सामयिक आवश्यकता का परिणाम है, क्योंकि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। इसका आविर्भाव प्रथम विश्व–युद्ध के समय हो चुका था, जब विन्स्टन चर्चिल सदृश व्यक्ति युद्ध–संवाददाता बनकर भीषण मार–काट और भयानक युद्ध–विभीषिका की ताजा रिपोर्ट सीधे प्रसार हुआ। लेकिन डॉ. हरदयाल का मानना है कि रिपोर्ताज का जन्म द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हुआ। जब साहित्यकारों ने युद्ध–भूमि के दृश्यों और घटनाओं की रिपोर्ट समाचारपत्रों में दी। इन रिपोर्टो में पेशेवर पत्रकारों की रिपोर्ट से स्वभाविक भिन्नता आ गयी थी। यह भिन्नता इनकी साहित्यिकता–कलात्मकता और उस उत्साह में थी जो युद्ध–भूमि पर उपस्थित साहित्यकार–सैनिकों के हृदय में विद्यमान था। इस प्रकार अनायास ही रिपोर्ताज का जन्म हो गया। सुश्री महादेवी वर्मा का भी यही कहना है कि रिपोर्ट या विवरण से सम्बद्ध रिपोर्ताज इसका विशेष विकास रूप में हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान इलिया एहरेनवर्ग को रिपोर्ताज लेखक के रूप में विशेष ख्याति मिली।

अर्थ एवं परिभाषा – रिपोर्ताज मूलतः फ्रेंच (फ्रांसिसी) भाषा का शब्द है। इसके पर्याय रूप में अंगरेजी शब्द रिपोर्ट के माध्यम से आया है। पर रिपोर्ताज रिपोर्ट से भिन्न है। रिपोर्ट का आशय किसी घटना, खबर, आँखों देखा हाल का यथातथ्य वर्णन है। जिसमें सारा विवरण दृश्यमान हो जाय। अर्थात वास्तविक घटना का यथातथ्य चित्र प्रस्तुत कर देना रिपोर्ट है। ठेठ हिन्दी में इसे रपट लिखना कहते हैं। इसका सीधा सम्बन्ध समाचार–पत्र से होता है। और तथ्य–चयन पर विशेष बल रहता है। जब किसी विषय का आँखों–देखा या कानों–सुना वर्णन इतने कलात्मक, साहित्यिक और प्रभावशाली ढंग से किया जाता है कि उसकी अमिट छाप हृदय पटल पर अंकित हो जाती है। तब उसे रिपोर्ताज की संज्ञा दी जाती है। लेखक का व्यक्तित्व के साथ इसमें संवेदना और भावना का आवेश भी निहित रहताहै। कहने का अभिप्रया यह कि किसी घटना विशेष को अपनी मानसिक इमेज में दीप्तमान करके पुनः मूर्त रूप में प्रस्तुत कर देना रिपोर्ताज का सहज धर्म है। इस प्रकार रिपोर्ट का साहित्यिक रूप ही रिपोर्ताज है। हिन्दी में रिपोर्ताज को सूचनिका, रूपनिका और वृत्त–निवेशन भी कहते हैं। परन्तु सामान्यतः प्रचलित शब्द रिपोर्ताज ही है।

परिभाषा : डॉ भगीरथ मिश्र रिपोर्ताज के स्वरूप पर विचार करते हुए लिखते हैं किसी घटना या दृश्य का अत्यन्त विवरणपूर्ण, सूक्ष्म, रोचक वर्णन इसमें इस पकार किया जाता है कि वह हमारी आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो जाय और हम उससे प्रभावित हो उठें।

गुलाबराय के अनुसार – रिपोर्ट की भाँति रिपोर्ताज में घटना या घचटनाओं का वर्णन तो अवश्य होता है, किन्तु इसमें लेखक के हृदय का निजी उत्साह रहता है जो वस्तुगत सत्य पर बिना किसी प्रकार का आवरण डाले उसको प्रभावमय बना देता है।

डॉ. रामचन्द्र तिवारी के मतानुसार – जब सफल पत्रकार या साहित्यकार वास्तविक घटना को अपनी भावना में रंगकर बिम्बधर्मी भाषा के माध्यम से सजीव बनाकर प्रस्तुत करता है, तब वह रिपोर्ताज की कला–सृष्टि करता है।

हिन्दी–साहित्य कोश में इसे पारिभाषित करते हुए कहा गया है...... रिपोर्ट के कलात्मक और साहित्यिक रूप को ही रिपोर्ताज कहते हैं।

डॉ. सत्यपाल चुघ का मत है – पत्र की जिस घटना को सत्य की रक्षा करते हुए कलात्मक रूप से संवेदना की अनुभूति की शक्ति से साथ प्रस्तुत किया जाता है, वह रिपोर्ताज नामक साहित्यिक विधा की कोटि में आता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं का अवलोकन करते हुए रिपोर्ताज के सम्बन्ध में सारतः कहा जा सकता है कि संघर्ष के क्षणों को तत्काल शब्दों में प्रस्तुत करना रिपोर्ताज कहा जा सकता है। युग चेतना, युग संघर्ष और जीवन की साधारणता को कला में स्थापित करने

की प्रवृत्ति से ही इसे साहित्यिकता प्राप्त होती है। वास्तविक घटना से भिन्न, कल्पना पर आधारित किसी घटचना का आवनेगपूर्ण वर्णन इस विधा में परिगणित नहीं हो सकता। घटनाओं की तत्कालीन मार्मिक प्रतिक्रिया ही आकर्षक शैली का परिधान ग्रहण कर रिपोर्ताज बनती है। इसमें लेखक छोटी-छोटी घटनाओं को लेकर पाठक के मानस-पटल पर पूरा प्रभाव डालने का प्रयास करता है।

विशेषताएँ -साहित्य की इस नवीन विधा की अधोलिखित विशेषताएँ मानी जाती हैं-

1. इसके तथ्य - कथन में कलात्मकता और साहित्यिकता का पुट रहता है।
2. वर्तमान से सम्बद्ध होने के कारण यह सामयिक होता है।
3. इसमें कथात्मकता होती है।
4. तथ्यपरकता होने के कारण इसमें लेखक तटस्थ रहता है।
5. रिपोर्ताज में घटना या दृश्य की प्रधानता होती है। अतः इसमें परिस्थिति और वातावरण-चित्रण का महत्व अधिक है।
6. इसमें घटनाओं का सहज मनोवैज्ञानिक रूप रहता है।
7. इसमें वर्णित घटना या घटनाएँ बड़ी तीव्रता से आँखों के सामने कौंध जाती है।
8. यह प्रत्यक्ष-दर्शित घटनाओं का वर्णन होता है।
9. इसमें सजीवता, रोमांचकता, बिम्बधर्मिता और विश्वसनीयता रहती है।[50]

रिपोर्ताज विधा का विकास : पश्चित में इस विधा का विकास बड़ी ही तीव्र गति से हुआ। रूस के इलिया एहरेनबुर्ग, अमरीका के डौंस पैसोस, फ्रांस के आंद्रे मैलरोज तथा इंग्लैंड के क्रिस्टोफर इथरवुड ने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की है।

हिन्दी में रिपोर्ताज लेखन की परम्परा शिवदानसिंह चौहान की रचना लक्ष्मीपुरा से प्रारंभ हुई। इस विधा के विकास में हंस पत्रिका ने विशेष योगदान दिया। इस पत्रिका ने ही सबसे पहले समाचार और विचार शीर्षक से एक स्तम्भ प्रारम्भ किया। यही स्तंभ बाद में अपना देश शीर्षक में परिवर्तित हो गया। इसमें प्रकाशित शिवदानसिंह चौहान की मौत के खिलाफ जिन्दगी की लड़ाई रचना विशेष महत्वपूर्ण है। इसी समय रांगेय राघव भी विशाल भारत में अदम्य जीवन शीर्षक से मार्मिक रिपोर्ताज लिख रहे थे। उन्होंने अकालग्रस्त बंगाल का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। इन रिपोर्ताजों का संकलन तूफानोंके बीच में हुआ है।

कतिपय साहित्यकारों ने जो रिपोर्ताज लिखे हैं वे उनके अन्य विधा के संकलन में संग्रहीत हैं जैसे प्रकाशचंद गुप्त के रिपोर्ताज रेखाचित्र में संकलित हैं। उनका बंगाल का अकाल रिपोर्ताज अत्यधिक लोकप्रिय एवं चर्चित हुआ। उपेन्द्रनाथ अश्क के रिपोर्ताज

रेखाएँ और चित्र तथा रामनारायण उपाध्याय के रिपोर्ताज गरीब और अमीर पुस्तक में संग्रहीत हैं। अश्क का पहाड़ों में प्रेममय संगीत तथा रामनारायण उपाध्याय को नववर्षाक समारोह में रिपोर्ताज उत्कृष्ट व लोकप्रिय है।

भदन्त आनन्द कौसल्यायन (देश की मिट्टी बुलाती है), शिवसागर मिश्र (वे लड़ेंगे हजार साल), डॉ. धर्मवीर भारती (युद्धयात्रा), कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर (क्षण बोले कण मुसकाये) तथा शमशेर बहादुर सिंह (प्लोट का मोर्चा) ने इस विधा को न केवल समृद्ध किया वरन् नये आयाम भी दिये हैं।

विवेकी राय ने पूर्वी उ.प्र. की घटनाओं से संबंधित स्तरीय रिपोर्ताज लिखे हैं। बाढ़! बाढ़!! बाढ़!!! उनका लोकप्रिय रिपोर्ताज है। निर्मल वर्मा का प्रागः एक स्वप्न रिपोर्ताज भी अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है।

खून के छींटे (डॉ. भगवतशरण उपाध्याय), अकलव्यके नोटस (फणीश्वरनाथ रेणु), पेरिस के नोट्स (रामकुमार), धरती के लिए (कैलाश नारद), चीनियों द्वारा निर्मित काठमाण्डू ल्हासा सड़क (जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी), क्या हमने कोई षड़यन्त्र रचा था। (सतीश कुमार) मुक्ति फौज (श्रीकान्त वर्मा) क्रांति करते हुए आदमी को देखना (कमलेश्वर) आदि रिपोर्ताज विशेषोल्लेखनीय हैं।

अन्य रिपोर्ताज लेखकों में विष्णु प्रभाकर, शिवसागर मिश्रा, ओमप्रकाश शर्मा, दिनेश पालीवाल, अवधेश कुमार श्रीवास्तव, लक्ष्मीचन्द्र जैन, अमृतराय, ठाकुर प्रसाद सिंह, महावीर अधिकारी, विष्णुकान्त शास्त्री आदि प्रमुख हैं।[51]

रिपोर्ताज के संदर्भ में धर्मयुग पत्रिका के योगदान के सम्बन्ध में डॉ. रामचन्द्र तिवारी का कथान है – धर्मयुग पत्रिका से रिपोर्ताज विधा को अधिक प्रेरणा और बल मिला है। रिपोर्ताज प्रकाशन की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण पत्रिका दिनमान सिद्ध हुई। इसके अतिरिक्त नयापथ, माध्यम, ज्ञानोदय, अवकाश, कल्पना, सूर्या, सारिका, रविवार, हिन्दी एक्सप्रेस, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि समय-समय पर अनेक महत्वपूर्ण रिपोर्ताज विभिन्न स्तम्भों के अन्तर्गत प्रकाशित हुए हैं।[52]

यात्रा :

यात्रा का तात्पर्य है एक स्थान से दूसरे स्थान जाना। यह स्थान परिवर्तनशीलता तथा संचरणशीलता मानव जीवन की गयात्मकता की बोधक है। यात्रा मानव जीवन की अनिवार्यता है। पाषाण युग तथा कृषि युग में यात्रा करना जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक था तो वर्तमान में यह किसी भी प्रकार के आनंद की प्राप्ति अथवा उद्देश्य पूर्ति के लिए आवश्यक हो गया है। यात्रा से जहाँ नवीन जानकारियाँ प्राप्त होती है, ज्ञान-वृद्धि होती है, वहीं मनुष्य प्रकृति के विविध रूपों, सौंदर्यों एवं विचित्रताओं से भी परिचित होता

है। ''इस प्रकार आनंद और उल्लास की भावना से तथा सौंदर्य-बोध की दृष्टि से ही प्रेरणा प्राप्त कर उसने यायावरी प्रवृत्ति को साहित्यिक मनोवृत्ति में परिणत किया और इन यात्रियों की मुक्त अभिव्यक्ति को यात्रा साहित्य की संज्ञा प्रदान की गई।''[53]

अर्थ एवं परिभाषा – यात्रा शब्द की निष्पत्ति 'या+ष्ट्रन' धातु एवं प्रत्यय से हुई है। यात्रा का वास्तविक अर्थ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की क्रिया है। मानव अपनी यायावरी वृत्ति तथा आदिम संस्कारों द्वारा उसके प्रति अपनी रुचि के कारण यात्रा करता है।[54]

हिन्दी गद्य साहित्य की इस नवीन विधा में रचनाकारों में भ्रमण और पर्यटन के सुन्दर अनुभव तथा उल्लासपूर्ण क्षणों को अपने शब्दों में उतारने का सफल प्रयास किया है। लेखकों की यही प्रवृत्ति यात्रा-साहित्य कहलायी महादेवी वर्मा ने यात्रा-साहित्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है – ''संगीत थम जाने पर गायक जैसे भैरवी के वाक्य और अपने गीत के संगीत पर विचार करने लगता है, वैसे ही यात्री अपनी यात्रा के संस्मरण दुहराता है। स्मृति के प्रकाश में अतीत-कालीन यात्रा को सजीव कर देने का तत्व इस वर्णन को साहित्य का रूप प्रदान करता है। पर्यटक के साथ पाठक भी अतीत में जी उठता है।'' डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने यात्रा-साहित्य की सर्जना-प्रक्रिया पर विचार करते हुए लिखा है – ''यात्रा-वृतान्तों में देश-विदेश के प्राकृतिक दृश्यों की रमणीयता, नर-नरियों के विविध जीवन-संदर्भ, प्राचीन एवं नवीन सौन्दर्य-चेतना की प्रतीक कलाकृतियों की भव्यता तथा मानवीय सभ्यता के विकास के द्योतक अनेक वस्तुचित्रमानस में रूपायित होकर वैयक्तिक रागात्मक उष्मा में दीप्त हो जाते हैं। लेखक अपनी-अपनी बिम्बविधायिनी कल्पना-शक्ति से उन्हें पुनःमूर्त करके पाठकों की जिज्ञासा-वृत्ति को तुष्ट तक देता है।''

लारेंस ने यात्रा-साहित्य के विषय में लिखा है – ''यात्राएँ हमें केवल स्पेस (स्थान) में ही नहीं ले जातीं, वे उन अज्ञात स्थानों की ओर भी ले जाती हैं, जो हमारे भीतर हैं।''[55]

विशेषताएँ – यात्रा-साहित्य-लेखक शब्दों की चित्रात्मकता से उस स्थल का ऐसा सजीव चित्र उपस्थित करता है, जैसे हम यात्रा-साहित्य न पढ़कर स्वयं अपनी आँखों से सबकुछ देख रहे हों। स्थानीयता, तथ्यपरकता, आत्मीयता, व्यक्तिपरकता, स्वच्छन्दता, कल्पना-प्रवणता, संवेदनशीलता, रोचकता आदि यात्रा-साहित्य की विशेषताएँ है।[56]

हिन्दी यात्रा-साहित्य का उद्‌भव और विकास : हिन्दी में यात्रा-साहित्य लिखने की परम्परा वस्तुतः पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से विकसित हुई। डॉ. पदमसिंह शर्मा 'कमलेश' का कथन है – ''जहाँ तक यात्रा साहित्य का सम्बन्ध है, उसका उदय

साहित्य की अन्य विधाओं के साथ अंग्रेजी के साथ प्रारम्भ हुआ है। वैसे मध्य युग में यात्रा का उद्देश्य मात्र तीर्थ–दर्शन होता था। यह बात ब्रजभाषा में उपलब्ध कुछ हस्तलिखित ग्रन्थों से सिद्ध होती है। ये सभी यात्राएँ चम्पू शैली में लिखी गयी है।'' अतः स्पष्ट है कि हिन्दी में यात्रा–वृतान्त लिखने की परम्परा का सूत्रपात भारतेन्दु से माना जा सकता है।[57]

हिन्दी यात्रा–साहित्य की विकास–यात्रा निम्नलिखित है –

भारतेन्दु–युग – भारतेन्दु ने अनेक नगरों और तीर्थ–स्थलों की यात्रा की थी और उनके यात्रा–वृतान्त समय–समय पर विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे। 'सरयूपार यात्रा', 'में हदावल की यात्रा', 'लखनऊ की यात्रा', हरिद्वार की यात्रा, वैद्यानाथ–धाम की यात्रा आदि उनके प्रमुख यात्रावृत हैं। उन्होंने इन वृतान्तों का बड़ा रोचक और सजीव वर्णन किया है। उनके समकालीन प्रतापनारायण मिश्र कृत 'विलयत की यात्रा', बालकृष्ण भट्ट कृत कातिकी का नहान, गया–यात्रा। इनके अतिरिक्त समकालीन लेखकों में माधवप्रसाद मिश्र आदि ने भी अपने यात्रा–वृतान्तों को सुन्दर सरल सरस शब्दावली में लिखा। इस युग में यात्रा–वृत्तान्तों में प्राकृतिक सुषमा, स्थानीय स्थानीय सांस्कृतिक जीवन, वेश–भूषा आदि के कलात्मक वर्णन की झलक भी मिलती है। अधिक–से–अधिक उनमें लेखक के स्वभाव और रुचि का निदर्शन ही होता है।

द्विवेदी–युग – द्विवेदी–युग के यात्रा–वृत्त सामान्यतया परिचयात्मक है। उनमें स्थानों की संस्कृति, सभ्यता, कला, साहित्य आदि का कलात्माक विवरण प्रस्तुत हुआ है। इस युग में हिन्दी भाषी क्षेत्र में शिक्षा के विकास और यातायात के साधनों की वृद्धि के कारण यात्रा के प्रति लोगों की रुझान बढ़ती गयी। हिन्दी के साहित्यकारों में कुछ जन्मजात सैलानी प्रवृत्ति के यायावर सामने आये। राहुल सांस्कृत्यायन, सत्यानारायण आदि अनेक साहित्यकार इसी प्रकार के थे। इन साहित्यकारों ने हिन्दी के यात्रा–साहित्य की श्रीवृद्धि की। राहुल सांकृत्यायन कृत मेरी तिब्बत–यात्रा, मेरी लद्दाख यात्रा, किन्नर देश में, कैलाश–मानसरोवर, शिवनन्दन सहायकृत, कैलास–दर्शन, डॉ. सत्यनारायण कृत आवारे की यूरोप यात्रा, काका कालेलकर कृत हिमालय–यात्रा आदि इस युग की महत्वपूर्ण यात्रा–साहित्य की कृतियाँ हैं।

पूर्व–स्वातन्त्रय युग – द्विवेदी–युग के पश्चात् इस युग में हिन्दी के मनीषी साहित्यकार अखिल भारतीय स्तर पर यात्राएँ करने लगे थे और उन्हें विविध भाषाओं का संज्ञान भी था इसलिए इस युग के यात्रा–वृत्त में अपेक्षाकृत परिपक्वता परिलक्षित होती है कलात्मक सौष्ठव के साथ इस युग के यात्रा–वृत्तों में संस्मरणात्मकता का निदर्शन भी होता है। इस युग के प्रमुख यात्रा–साहित्य–लेखकों में श्रीगोपाल नेबाटिया कृता 'भूमण्डल–

यात्रा', सेठ गोविन्ददास कृत पृथ्वी परिक्रमा और सुदूर दक्षिण में भगवत शरण उपाध्याय कृत वह दुनिया, मैंने देखा, सागर की लहरों पर, रामवृक्ष बेनीपुरी कृत पैरों में पंख बाँधकर, उड़ते चलो उड़ाते चलो, देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'धरती गाती है', 'बुकसेलर की डायरी' आदि उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर-युग – स्वातन्त्रता के बाद देश में आवागमन की सुविधाओं के विकास और सम्पन्नता में आशातीत श्री वृद्धि के कारण यात्रा के लिए व्यापक प्रचार-प्रसार मिला। इस युग में लेखकों में यशपाल, केदारनाथ अग्रवाल, रामधारी सिंह 'दिनकर', अमृतराय, रांगेयराघव, अज्ञेय कृत अरे यायावर रहेगा याद, एक बूँद सहसा उछली, मोहन राकेश कृत आखिरी चट्टान तक, निर्मल वर्मा कृत चीड़ों पर चाँदनी, डॉ. रघुवंश कृत 'हरि घाटी', 'मृग-मरीचिका के देश में', डॉ. नगेन्द्र कृत 'तन्त्र लोक से यन्त्र लोक' हंस कुमार तिवारी कृत 'भू-भाग', 'कश्मीर' आदि यात्रा-साहित्य की उत्कृष्ट कृतियाँ हैं। सन् 1968 ई. से लेकर 1990 ई. तक अनेक उल्लेखनीय यात्रावृत्त प्रकाशित हुए हैं। इनके अतिरिक्त आज विविध पत्र-पत्रिकाओं में जाने कितने यात्रावृत्त बराबर प्रकाशित हो रहे हैं। इन यात्रावृत्तों को पढ़कर यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि आज हिन्दी का यात्रा-साहित्य कितना समृद्ध हो चुका है।[58]

गद्य काव्य

भावमय संवेदनशीलता, रसात्मकता, लयात्मकता आदि विशेषताओं से युक्त गद्य ही गद्यकाव्य कहलाता है। गद्यकाव्य से अभिप्राय उस रचना से है जिसमें वैयक्तिक आशा-निराशा, सुख-दुख आदि घनिभूत भावनाओं को साधारण गद्य से भिन्न भावपूर्ण गद्य में व्यक्त किया जाताहै उसमें संवेदनशीलता एवं रसात्मकता तो छन्दोबद्ध काव्य के समान होती है किन्तु माध्यम गद्य होता है।

डॉ. श्रीधर मिश्र के अनुसार, गद्य काव्य अथवा गद्यगीत व्यापक अर्थ में निबन्ध का एक रूप है। भावात्मक निबन्ध जब और अधिक भाव प्रधान, वैयक्तिक होता है, उसमें संगीतमयता, संक्षिप्तता और भावसंकलन केतत्व मुख्य रूप से मिलने लगते हैं तब वह गद्य में होकर भी गद्य काव्य कहलाने लगता है।[59]

हिन्दी गद्य काव्य का विकास – प्रमुख विद्वानों का विचार है कि रवीन्द्रनाथ टैगोर की प्रसिद्ध कृति गीतांजलि के प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी। गद्य काव्यों की रचना हुई। परन्तु यह विचार पूर्णतः उचित नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि हिन्दी गद्य काव्य पर बंगला गद्यकाव्यों का प्रभाव पड़ा और हिन्दी साहित्यकारों ने भी उनसे प्रेरणा प्राप्त की, किन्तु हिन्दी गद्यकाव्य का विकास भारतेन्दु युग से ही होने लगा था। भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी साहित्यकारों ने विविध विषयक उत्कृष्ट भावात्मक निबन्ध लिखे। यह बात

अवश्य हैकि गद्यकाव्य की संज्ञा के अभाव में वे महत्व न पा सके।

कतिपय विद्वानों ने तो संस्कृति की कादम्बरी (बाणभट्ट) के प्रभाव को भी स्वीकारा है। द्विवेदी युग में ब्रजनन्दन सहाय की कृति सौंदर्योपासक भी भावमयता एवं काव्यात्मकता के कारण अत्याधिक लोकप्रिय हुई। बंगाला के चन्द्रशेखर मुखर्जी कृत उद्भ्रांत प्रेम के हिन्दी अनुवाद साहित्यकारों के प्रभाषित किया। बंगला की ही अन्यकृति अश्रुधारा का अनुवाद श्री ब्रजनन्दन मिश्र किया। इसी समय रवीन्द्रनाथ टेगोर तथा बंकिमचन्द्र के अपने गद्यकाव्यों के हिन्दी अनुवाद भी हुए। रवीन्द्रनाथ टैगोर का विचित्र प्रबन्ध शीर्षक से अनुदित गद्यकाव्य अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। इन रचनाओं से प्रभावित राजा राधिकारमण सिंह के नवजीवन या प्रेमलहरी में वियोग की विविध अवस्थाओं का मार्मिक चित्रण हुआ है।[60]

श्री जयशंकर प्रसाद एवं पं. माखनलाल चतुर्वेदी ने भी हिन्दी गद्य काव्य के स्वस्थ दिशा प्रदान कर उल्लेखनीय योगदान दिया है। प्रसाद और चतुर्वेदी जी ने यद्यपि स्वतंत्र रूपसे गद्य काव्य नहीं लिखे थे परन्तु उन्होंने इस क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया कि उद्भ्राँत प्रेम की अतिरंजित भावुकता को संयमित हिन्दी काव्य को पथभ्रष्ट होने से बचा लिया है।

गद्यकाव्य लिखने वालों में रामकृष्ण दास का स्थान सर्वोपरि है। उनके गद्यकाव्य साधना (1917) पर रवीन्द्रनाथ टैगोर की गीतांजलि का प्रभाव है। संलाप, प्रवाल, प्रवाह तथा छायापथ उनके अन्य गद्यकाव्य संग्रह हैं। वियोगी हरि गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित कवि हैं। कृष्ण भक्त होने के कारण उनकी तरंगिणी, अन्तर्नाद, भावना, प्रार्थना आदि रचनाओं में भक्ति के साथ-साथ मानव-प्रेम और राष्ट्र-प्रेम की भावनाएँ भी मुखरित हुई हैं। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अन्तस्थल तथा तरलाग्नि की रचना की है।

इनके अतिरिक्त दिनेशनंदिनी डालमिया, शान्तिप्रसाद वर्मा, तेजनारायण काक, भंवरलाल सिंधी, रामकुमार वर्मा, रामप्रसाद विद्यार्थी रावी आदिन ने भी उल्लेखनीय योगदान दिय है।

छायावादी युग की काव्यधारा गद्यकाव्य के विकास की दृष्टि से अत्यन्त अनुकूल सिद्ध हुई । सौंदर्य चेतना की यह अभिव्यक्ति इस युग की छायावादी काव्य पद्धति के सर्वथा अनुकूल थी, इसलिए भावुकता कल्पना, प्रतीकात्मकता, शब्द लालित्य, चित्रात्मकता आदि प्रवृत्तियाँ काव्य रचनाओं की भाँति गद्य काव्यों में भी सहज उपलब्ध है।[61]

छायावादोत्तर युग में यथार्थवादी प्रवृत्तियों की प्रधानता के कारण गद्यकाव्यों के लिए उपयुक्त वातावरण न बन सका, फिर भी अनेक रचनाओं के प्रकाशन से यह सिद्ध हो जाता है कि गद्यकाव्य विधा एक महत्वपूर्ण विधा है। श्रद्धाकण (वियोगी हरि) मेरी खाल

ही हाय, जवाहर, नाम्नी, आराधना (राजनारायण मेहरोत्रा रजनीश) आदि इस युग के उल्लेखनीय गद्यकाव्य हैं। श्रीमती दिनेशनंदिनी डालमिया ने अनपे गद्यकाव्यों द्वारा अत्यन्त ही प्रसिद्धि प्राप्त की है। शारदीय, दुपहरिया के फूल, वंशी–रख, उन्मन, स्पन्दन आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। रामप्रसाद विद्यार्थी रावी की कृति शुभ्रा भी महत्वपूर्ण है।

तेजनारायण काक ने निर्झर और पाषाण में सामान्य विषयों को भी संवेदनात्मक धरातल पर प्रस्तुत किया है। ब्रह्मदेव की प्रमुख कृतियाँ हैं – निशीथ, आँसू भरी धरती और उदीची। डॉ. रघुवीर सिंह की शेष स्मृतियाँ में ऐतिहासिक स्थलों से सम्बद्ध भावानुभूतियों की अभिव्यक्ति है। माखनलाल चतुर्वेदी के साहित्य देवता में भी भावात्मकता का स्वर प्रधान है।

इनके अतिरिक्त अन्य रचनाओं में रंगनाथ दिवाकर (अन्तरात्मा से) त्यौहार राजेन्दसिंह (मौन के स्वर), महावीर शरण अग्रवाल (गुरुदेव), नरोत्तमदास गुप्त (जीवन रेखाएँ), विश्वम्भर नाथ (सीने से पहले) शिवचन्द्र नागर (प्रभात प्रणयगीत) गिरिजादेवी सक्सेना (विच्छेद बेला), यदुनाथ पाण्डेय (प्रस्थान), चन्द्रिका प्रसाद श्रीवास्तव (अन्तर रागिनी) उमेश शास्त्रक्षी सहयोग दिया है।

इस युग के गद्यकाव्यों में प्रेम और राष्ट्रीयता का स्वर ही प्रधान है। प्रेम के विविध पक्षों तथा उनमें मन की सूक्ष्म अनुभूतियों का अंकन अत्यन्त ही भावप्रणव, काव्यात्मक एवं चित्रात्मक भाषा–शैली द्वारा किया गया है।[62]

निबंध

आधुनिक काल में गद्य को लेकर साहित्य का जो अंग विशेष रूप से परिपुष्ट गुणसमन्वित तथा व्यापक बना और बनता चल रहा है उसका नाम निबंध है।

निबंध गद्य साहित्य की एक प्रमुख विधा है जिसे हिन्दी साहित्य की एक आधुनिक विधा की भी संज्ञा दी गयी है। इसका सम्बन्ध मानव की आत्म प्रकाशन की प्रवृत्ति से है। मनुष्य एक सम्वेदनशील प्राणी है। वह जगत के बहुविध व्यापारों का संस्पर्श पाकर तद्जन्य विचारों अनुभूतियों एवं आस्थाओं को प्रकट करता है। उसकी यही आत्मप्रकाशन की प्रवृत्ति निबन्ध सर्जन करती है। उसकी यह सर्जना–प्रवृत्ति अपनी विराट् भूमिका लेकर प्रस्तुत होती है। तात्पर्य यह है कि उसकी यह प्रवृत्ति साधारण विषय से लेकर गंभीर विषयों तक अपना दौड़ लगाती है। इससे उसका विषय–आयाम विस्तृत हो जाता है। यही कारण है कि निबन्ध के अन्तर्गत लेख, संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, भाषण, डायरी और विज्ञप्ति आदि विषय आ जाते हैं।

परिभाषा : निबन्ध का आयाम इतना विस्तृत है कि इसकी कोई सुनिश्चित परिभाषा स्थिर नहीं की जा सकती फिर भी इसके किंचित् लक्षणों के आधार पर विद्वानों ने इसे

परिभाषित करने का प्रयास किया है। एक पाश्चात्य समीक्षक ने कहा है कि एक निबन्धकार की कलाकृति को निबन्ध कहते हैं। निबन्ध अंग्रेजी के Essay फ्रेंच भाषा के एसाइस और लैटिन के एक्जीयम के पर्याय के रूप में प्रचलित है। जिनके अर्थ हैं – प्रयाय करता, प्रयोग करना, मापना, तौलना आदि।[63]

योरोप में इस विधा के जन्मदाता फ्रान्सीसी लेखक मोन्टेन ने इस शब्द का इसी अर्थ मे प्रयोग किया है। उसके निबन्धों में सम्बद्धता का अभाव-सा है। उसने अपनी कल्पना की लगान ढीली कर रक्खी थी और उसके विचार स्वाभाविक विचार-शृंखला का अनुकरण करते थे। उसके निबन्ध एक कल्पनाशील मनके विचरण मात्र हैं। डॉ. जॉनसन की परिभाषा में अंग्रेजी निबंध को असगठित, अपूर्ण और अव्यवस्थित मन का विचरण कहा गया है – **A loose sally of mind an irregular, iddigested piece, not a regular and orderly performance,** अंग्रेजी निबन्ध का शाब्दिक और प्रारमम्भिक अर्थ यह अवश्य था किन्तु लेखकों की रुचि शृंखला की ओर बढ़ती गई और इसमें अन्य तत्वों को अपेक्षा बुद्धितत्व का अधिकाधिक समावेश होने लगा है और आसम्बद्धता निबन्ध का व्यवार्तक गुण नहीं रहा, वरन वह एक दोष की कोटि में आ गया है। इस प्रकार व्यवहार भी अब पाश्चात्य शब्द ऐसे और हिन्दी शब्द निबन्ध प्रायः समानार्थक हो गये हैं, फिर भी उसमें अपने नाम का थोड़ा बहुत प्रभाव शेष है ही। इस बदले हुए दृष्टिकोण का परिचय हमको एक अंग्रेजी कोष में ही दी हुई परिभाषा में मिलता है–

A composition of immoderate length of any particular suject or branch of subject originally implying want of finish, An irregular indigested piece but now said of a composition more or less elaborate in style, though limited in range.[64]

भारतीय विचारकों ने अपना अपना मत प्रकट किया जिसके परिणामस्वरूप निबन्ध की एक निश्चित परिभाषा का अभाव रहा परन्तु इन परिभाषा की अनेकता से एक लाभ यह हुआ कि निबन्ध के स्वरूप और उसके तत्व स्पष्ट होते गये परिस्थिति एवं स्मयानुसार लेखक, समीक्षक और विद्वानों ने निबन्ध को परिभाषित किया जिनमें से कुछ विचारकों के विचार निम्नवत हैं –

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में – यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबन्ध में ही सबसे अधिक सम्भव होता है। आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबन्ध उसीको कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व अर्थात व्यक्तिगत विशेषता हो। व्यक्तिगत विशेषता का मतलब यह नहीं है कि उसके प्रदेश के लिए विचारों की शृंखला ही न रखी जाए या जान बूझकर जगह-जगह से तोड़ दी जाये-भावों की विचित्रता

दिखाने के लिए ऐसी अर्थ योजना की जाये जो उनकी अनुभूतियों के प्रकृति या लोक सामान्य स्वरूप से कोई सम्बन्ध ही न रखे।

डॉ. भगीरथ मिश्र की धारणा पर आचार्य शुक्ल जी का प्रभाव स्पष्टतः झलकता है जो उनकी उक्त परिभाषा में देखा जा सकता है – वह गद्य रचना जिसमें किसी विषय का शृंखलित विवेचन अथवा वैयक्तिक भाव या विचारधारा का क्रमबद्ध रोचक प्रकाशन प्रस्तुत किया जाये वह निबन्ध कहलाता है।[65]

आचार्य पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी की परिभाषा – भावों या विचारों की प्रधानता तथा शैली की रमणीयता के योग से जिस नवीन साहित्य का प्रचलन हुआ उसे ही निबन्ध साहित्य की संज्ञा दी गई है।[66]

श्री शिवदान सिंह चौहान ने निबन्ध के संदर्भ में कहा है – निबन्ध गद्य का अत्यन्त शक्तिशाली रूप विधा है। कुशल निबन्धकार अपने रचना लाघव से अत्यन्त संक्षेप में बहुत बड़ी तत्व की बात सरल कलात्मक ढंग से या सुबोध वैज्ञानिक पद्धति से पाठकों तक प्रेषित करता है। आचार्य सीताराम चतुर्वेदी की मान्यता है कि वास्तविक निबन्ध वही होता है जिसमें लेखक किसी मन में उठे हुए भावात्मक विचार को दार्शनिक रूपसे तत्व निरूपण की शैली से व्यक्ति करे। साधारणतः निबन्ध वह साहित्य रूप है, जो न बहुत बड़ा हो, न बहुत छोटा, जो गद्यात्मक हो, जिसमें किसी विषय का अत्यन्त सरल, चलता-सा विवरण हो, विशेषतः उस विषय का वर्णन हो जिसका स्वयं लेखक से सम्बन्ध हो। अनुभव और गम्भीर ज्ञान का संक्षिप्त और लघुपरिणाम निबन्ध है।

डॉ. गणपति चन्द्र ने निबन्ध की परिभाषा इस प्रकार की है – साहित्य की श्रेणी में आने वाले निबन्ध चाहे कितने ही गम्भीर या गम्भीर विषय क्यों न हो, वे हमारे हृदय की भावविचियों को अवश्य उद्वेलित करते हैं।

श्री जगन्नाथ नलिन का अभिमत है कि – निबन्ध स्वाधीन चिन्तन और निश्छल अनुभूतियों का सरस, सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकाशन हैं।[67]

जे. बी प्रीस्टले ने निबन्ध शीर्षक के आलोचनात्मक लेख में निबन्ध के स्वरूप का सुन्दर विवेचन किया है। उसने कहा है – सच्चे निबन्धकार के लिए कोई विषय आवश्यक नहीं, या यों कहें कि वह दुनिया का कोई भी विषय उठा सकता है। वह विषय जिसमें चाहे जैसे झुकाने और चाहे जिस तरफ मोड़ने की शक्ति भरपूर रहती है। क्योंकि उस निबन्ध के द्वारा वस्तुतः वह अपना व्यक्तित्व व्हीं पकट करना चाहता है। इस कारण जिस विषय का उसे बिलकुल ध्यान न हो उसपर भी वह निबन्ध लिख सकता है, और वह भी खुशी से। वह निबन्ध में केवल अपने अज्ञान की चर्चा करेगा। सच्चा निबन्ध किसी रहस्य लाप या प्रेम से किये हुए संलाप की भाँति होता, और सच्चे निबन्धकार

की पाठक से जो हितवार्ता होती वह चतुराई से भरी और पाठक को प्रभावित करने वाली होती है। वह हर शब्द अपने हृदय के अन्तराल से बोलता है, उसका लेखन अतः स्तल की आकुलता व्यक्त करता है।[68]

निबन्ध का स्वरूप

निबन्ध की परिभाषा के पश्चात् निबन्ध के स्वरूप हो जाना आवश्यक है। निबन्ध के स्वरूप की ओर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि इस विषय में पश्चिमीय एवं भारतीय विद्वान में विभिन्नता है। इस विभिन्नता का प्रमुख आधार निबन्ध और ऐसे शब्दों की व्युत्पत्ति ही है। संस्कृति साहित्य में निबन्ध शब्द का अर्थ है भली–भाँति कसी हुई, गठी हुई रचना। अतएव निबन्ध में तारतम्य और संगठन होना स्वाभाविक है। परन्तु ऐसे का अर्थ है प्रयत्न। मोन्टेन ने इन शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है। उसके निबन्ध कल्पनालोक में विचरण करनेवाले प्राणी के उद्धार हैं। अतएव उनमें तारतम्य और संगठन का आभाव होना स्वाभाविक है। कसाव शब्द से निबन्ध को सामान्य लम्बाई का कहा है। अतएव जहाँ तक आकार का प्रश्न है भारतीय एवं अभारतीय सभी विद्वान एक मत हैं। परन्तु कसाव शब्द से एक दूसरी ध्वनि भी निकलती है कि निबन्ध को सुगठित एवं सुव्यवस्ति भी होना चाहिए। पश्चिमीय विद्वानों के अनुसार निबन्ध की शैली में शैथिल्यपूर्ण वातावरण की प्रधानता होती है और वह किसी विशेष दिशा की ओर तीव्रगति से प्रवाहित नहींहोती। परन्तुभारीतीय विद्वान जैसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि निबन्ध के प्रत्येक वाक्य को सम्बद्ध विचार खण्ड से युक्त होना अनिवार्य समझते हैं।

इस मतभेद का मूल कारण निबन्ध में निबन्धकार के व्यक्तित्व के सन्निवेश का भिन्न–भिन्न अर्थों में अपनाया जाना ही है। आचार्य शुक्ल के अनुसार वैयाक्रकता से आशय लेखक की शैली एवं उसकी हृदयगत प्रवृत्तियों की एकमात्र झलक से है। व्यक्तिगत विशेषता लाने के लिए निबन्ध में विचारों की श्रंखला तोड़ देना अथवा सामान्य अनुभूति से परे अलौकिक बातों का सन्निवेश करना वाञ्छनीय नहीं समझा जाता। निबन्धकार अभीष्ट विषय का प्रतिपादन ही निजी ढंग से करता है। वह निबन्ध में अपने विषय में अधिक न कहकर वर्ण्य विषय के सम्बन्ध में ही अपने विचारों के प्रकाशन के लिए सचेष्ट रहता है। परन्तु पश्चिमी विद्वानों ने मैण्टेन के आधार पर निबन्धकार से सम्बन्धित व्यक्तियों एवं घटनाओं आदि के चित्रण पर जिससे निबन्धकार के विषय में आत्मीयता का अनुभव करने लगे, अधिक महत्व दिया गया है। इस तरह हम निबन्ध के प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध में अधिक ज्ञान न प्राप्त कर निबन्धकार से अधिक परिचित हो जाते हैं। ऐसी रचना में, इस विशेष स्थिति में, भारतीय निबन्धों का प्राप्त भावों एवं विचारों का कसाब कहाँ उपलब्ध हो सकता है ? पश्चिम में निबन्ध को कविता के समकक्ष

रखकर मनस्तृप्ति एवं हृदय को अनुरचित करने का प्रधान साधन मानते हैं, इसलिए निबन्ध के सरल विधान की ओर अधिक ध्यान देते हैं। परन्तु भारत के विद्वानों ने निबंध विचार गुम्फन को अधिक महत्व देकर उसे मनन एवं अभ्यास की वस्तु माना है।[69]

निबन्ध की इस विकास–यात्रा को हम सुविधा की दृष्टि से अधोलिखित भागों में विभक्त कर सकते हैं :

1 – उदयकाल (सन् 1850 से 1900 ई. तक)

2 – विकास काल (सन् 1900 से 1920 ई. तक)

3 – उत्कर्ष काल (सन् 1920 से 1955 ई. तक)

4 – वर्तमान काल (सन् 1955 से अद्यावधि तक)

हिन्दी निबन्ध का उदय काल (सन् 1850 ई. से 1900 ई. तक)

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हिन्दी साहित्य परम्परा रूढ़ि का ही अनुसरण कर रहा था, परन्तु इस समय खड़ी बोली के गद्य की अपनी एक निश्चित दिशा का भान होने लगा था। इस समय खड़ी बोली गद्य में विविध व्यावहारिक विषयों से सम्बन्धित रचनाएँ होने लगीं थीं। खड़ी बोली की रचनाओं से हिन्दी प्रदेश के जीवन में एक आधुनिकता का बीजारोपण हुआ। पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क में आने के कारण खड़ी बोली गद्य अपने विकास की ओर अग्रसरित हुआ। इस विकास में 'उदन्तमार्तण्ड', 'बंगदूत', 'बनारस अखबार' और 'सुधाकर' आदि पत्र–पत्रिकाओं ने अपना विशेष योगदान दिया। इन पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन का उद्देश्य धनार्जन नहीं था वरन् इनके माध्यम से अपने विचारों का प्रचार एवं प्रसार करना था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', 'कवि वचन सुधा', नवीन चन्द्र राय की 'ज्ञान प्रदायिनी', प्रताप नारायण मिश्र का 'ब्राह्मण', बालकृष्ण भट्ट का हिन्दी प्रदीप, बदरी नारायण चौधरी प्रेमधन का नागरी नीरद और आनन्द कादम्बिनी, लाला श्रीनिवास दास का सदादर्श, अम्बिकादत्त व्यास का पीयूष प्रवाह और बाल मुकुन्द गुप्त का भारत मित्र आदि पत्र–पत्रिकाओं ने हिन्दी खड़ी–बोली गद्य–साहित्य को विकसित बनाने में सक्रिय योगदान दिया। इन पत्रिकाओं के सम्पादकों एवं प्रकाशकों में से कई व्यक्ति निबन्ध लेखक भी थे। इनमें ठाकुर जगमोहन सिंह, विष्णु लाल पण्ड्या, किसोरी लाला गोस्वामी, श्रीधर पाठक आदि प्रमुख हैं। इन लेखकों ने अपने लेखों में सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और साहित्यिक विचारों की अभिव्यक्ति की है। राजा लक्ष्मण सिंह हिन्दी गद्य साहित्य क्षेत्र में विशुद्ध हिन्दी का माध्यम लेकर आये। लेकिन उन्होंने अपने समय में प्रचलित अरबी–फारसी और अंग्रेजी के शब्दों का बहिष्कार किया। ऐसे ही समय में भाषा और साहित्य दोनों प्रभाव डालने वाले 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' का उदय हुआ।

इसी काल को हिन्दी निबन्ध का 'उदय काल' या 'प्रादुर्भाव काल' स्वीकार करने में किसी को भी हिचक नहीं है। इस काल के हिन्दी निबन्धों का अधिकांश प्रायः पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुआ जिसका उद्देश्य समाज की जर्जर रूढ़ियों पर प्रहार करना था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी भिन्न-भिन्न विषयों पर अपने निबन्ध लिखे। उनके निबन्ध प्रमुख रूप से हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में प्रकाशित हुए जिनका संग्रह डॉ. केशरी नारायण शुक्ल ने भारतेन्दु के निबन्ध नाम से किया है। इनके निबन्धों को मुख्यतः तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। (1) सांस्कृतिक-सामाजिक विषयों से सम्बन्धित, (2) यात्रा वर्णन प्रधान तथा, (3) हास्य-व्यंग्य प्रधान।

इनके निबन्धों में जीवन की स्वच्छन्दता, सप्राणता, भावोत्तेजना, व्यंग्य विनोद और आकर्षण के तत्व मिलते हैं। इनके निबन्धों की भाषा में स्वाभाविकता सरलता और मधुरता प्राप्त होती है। इन्होंने अपने निबन्धों में किसी भी भाषा का प्रयोग व्यावहारिक ढंग से ही किया है। कहीं-कहीं तो वे शब्दों का नवीन अर्थ निकालने के लिए उनकी व्याख्या अपने ढंग से करते हैं। वे यत्र-तत्र भाषा को आकर्षक बनाने के लिए मुहावरों का भी प्रयोग करते हैं। उनकी शैली निबन्धों की भाषा और विषयों के अनुकूल होती हैं। प्रायः व्यंग्यात्मक, भावात्मक और आत्मपरक शैलियों के दर्शन इनकी रचनाओं में होते हैं। वे अपनी शैली को पात्र, परिस्थिति, स्थान और कला के अनुसार बदलने में सर्वथा सक्षम दिखायी देते हैं। इस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निबन्धों में में वे सभी विशेषताएँ पायी जाती हैं जो एक सफल निबन्धकार के लिए अपेक्षित हैं। वे हिन्दी साहित्य की प्रगति को एक निश्चित दिशा में प्रकट करने वाले दीप स्तम्भ हैं। इसलिए इस युग को भारतेन्दु युग कहना भी अनुचित न होगा। इस युग के प्रमुख निबन्धकारों में बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, राधारणण गोस्वामी, पण्डित बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन', ठाकुर जगमोहन सिंह। लाला श्री निवास दास, मोहन लाल विष्णुलाल पण्डया, काशी नाथ खत्री, अम्बिका दत्त व्यास, हरि मुकुन्द शर्मा आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है।

हिन्दी निबन्ध का विकास काल (सन् 1900 ई. से 1920 ई. तक)

हिन्दी साहित्येतिहास के अन्तर्गत विकास काल को द्विवेदी युग की संज्ञा दी गयी है। इसे हिन्दी भाषा के परिष्कार का युग भी कहा जाता है। इस युग के लेखकों में महावीर प्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों ही प्रभावशाली थे। अतः इतिहासकारों ने उन्हीं के नाम पर इस युग का नामकरण द्विवेदी युग किया। इस युगमें भारतेन्दु युग के लेखकों की चिन्तन धारा से बिलकुल भिन्न साहित्यगत चिन्तन किया गया। द्विवेदी युगीन साहित्यकारों का प्रमुख उद्देश्य-पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होकर हिन्दी साहित्य का सर्वाङ्गीण विकास करना था। इस युग के लेखकों में भारतेन्दु युग जैसी स्वच्छन्दता

वृत्ति नहीं पायी जाती और न तो उनमें आत्मप्रकाशन की स्पृहा ही थी।

द्विवेदी जी ने सरस्वती पत्रिका के माध्यम से उन्होंने निबन्धों में जितना परिष्कार किया वह श्लाघनी है। उससे निबन्ध को एक नयी दिशा मिली। इस पत्रिका से निबन्धकारों को अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने का अवसर प्रदान किया। फलतः भारतेन्दु युग में गद्य का जो विकास हुआ था, वह इस युग में बहुमुखी होकर प्रकट हुआ। द्विवेदी युग में शब्द भण्डार की वृद्धि के अतिरिक्त गद्यगत विविध शैलियाँ भी अपनायी गयीं। इसमें कुछ तो मौलिक थीं, कुछ अनुकरण मात्र। इसमें अंग्रेजी की लाक्षणिकता, बंगला की कोमलकान्त पदावली और उर्दू की मुहावरेदार शैलियाँ आती हैं।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने आलोचनात्मक, व्यंग्यात्मक और तर्कप्रधान शैलियों को आश्रय ग्रहण किया। प्रसाद ने अलंकृत भाषा शैली, पद्मसिंह शर्मा ने चुटीली व्यंग्यात्मक शैली, बालमुकुन्द ने व्यंग्यपूर्ण शैली अपनायी। भारतेन्दु युगीन हिन्दी साहित्य ने जो प्रासाद निर्मित किया, 'द्विवेदी युग' में आकार विशेष प्रकार की रंग-बिरंगी साज-सज्जाओं से सुसज्जित हुआ। इस अलंकरण वृत्ति में देश और विदेशी भाषाओं के प्रवाह का भी हृदयहारी समन्वय दृष्टिगत होता है।

द्विवेदी जी ने विषयप्रधान निबन्धों को लिखने का सर्वाधिक प्रचलन किया। द्विवेदी जी के निबन्धों की शैलियों को चार भागों में बाँटा जा सकता है : 1) विचारात्मक, (2) परिचयात्मक (3) वर्णनात्मक, (4) समीक्षात्मक।

इन्होंने अधिकतर परिचयात्मक या वर्णनात्मक निबन्ध ही अधिक लिखा है। इसी दृष्टि से द्विवेदी जी ने साहित्य, विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र, दर्शन पुराणेतिहास आदि विविध विषयों के सिद्धान्तों को सरल ढंग से अपने निबन्धों में स्थान दिया। संस्कृत से अलंकृत और काव्यत्मक गद्य से प्रभावित इनके कुछ भावात्मक निबन्ध भी प्राप्त होते हैं। इनके समीक्षात्मक निबन्धों में व्यवहारिक एवं सैद्धांतिक दोनों प्रकार के निबन्ध पाये जाते हैं।

द्विवेदी युगीन समीक्षात्मक निबन्धकार बाबू श्याम सुन्दर दास ने अध्यापकीय शैली में बहुत से निबन्ध लिखे हैं, जो साहित्य रसिकों और छात्रों के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हुए। इन्होंने अधिकतर भाषा एवं साहित्य के विविध पक्षों पर गम्भीर शैली में निबन्धों की रचना की है। इनके निबन्धों का संकलन साहित्यालोचन है।

हिन्दी निबन्ध का उत्कर्षकाल (सन् 1920 ई. से 1955 ई. तक)

हिन्दी निबन्ध के इस काल में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का प्रतिनिधित्व दिखायी देता है। इस युग में विचारात्मक निबन्धों को विशेष महत्व दिया गया। इसमें बौद्धिकता का प्राबल्य था। स्वयं रामचन्द्र शुक्ल ने उसी निबन्ध को महत्वपूर्ण माना जिसमें बुद्धि हृदय

का समन्वय हो और एक बार उसे पढ़ने पर पाठक की बुद्धि उत्तेजना युक्त होकर नवीन विचार सरणि की ओर उन्मुख हो जाये। इनके निबन्ध में विचार का अटूट शृंखला प्राप्त होती है। निबन्ध में पाठक की अभिरुचि को बनाए रखने के लिए यत्रःथत्र हास्य एवं व्यंग्य का भी आश्रय ग्रहण किया गया है। इनके निबन्धों में मन के भावों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्राप्त होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के पूण परिपक्वावस्था के लिखे गये निबन्ध विचार वीथी के नाम से प्रकाशित हुए इसके पश्चात् प्रौढ़ एवं उत्कृष्ट निबन्ध पुस्तकाकार के रूप में चिंतामणि भाग 1 तथा भाग 2 के नाम से प्रकाशित हुए। इन निबन्धों में सुसंगठित एवं गुम्फित विचार शृंखला पायी जाती है। उनमें विचारात्मक निबन्धों का चरमोत्कर्ष विद्यमान था।

महादेवी वर्मा ने जिस प्रकार काव्य के क्षेत्र लमें अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है, उसी प्रकार निबन्ध के क्षेत्र में भी उनका मौलिक चिंतन, अद्‌भुत ज्ञान, अप्रतिम विश्लेषण पद्धति, विशिष्ट जीवन-दर्शन अनुपम दृष्टिकोण दिखायी देता है। महादेवी जी ने अधिकांशतः विचारात्मक निबन्ध लिखे हैं। जिनमें से कुछ संस्मरणात्मक, आलोचनात्मक, नारी समस्या मूलक कुछ अन्य विषयों से सम्बन्धित हैं। उनके प्रमुख निबन्ध संग्रहों में अतीत के चलचित्र, स्मृति रेखाएँ, शृंखला की कड़ियाँ, विवेचनात्मक गद्य, साहित्यकार की आस्था, क्षणदा, पथ के साथी आदि हैं। इसके अतिरिक्त काव्य ग्रंथों की भूमिकाएँ भी उनके निबन्धगत चिंतन की द्योतिका है। उनके रेखाचित्र अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। क्षणदा में संस्मकृति, भाषा और यात्रा से सम्बन्धित अनेक उत्कृष्ट निबन्ध संकलित हैं। इनकी भाषा शैली के चार रूप प्राप्त होते हैं। 1) विवेचनात्मक, (2) चित्रात्मक, (3) विचारात्मक, (4) वर्णनात्मक। महादेवी जी ने इन्हीं शैलियों के माध्यम से अपने निबन्धों में काव्य का बड़े कलात्मक ढंग से प्रतिपादन किया है।

वियोगी हरि अपने भावात्मक निबंधों के लिए प्रख्यात हैं। वैसे तो इन्होंने विचारप्रदान निबन्धों की रचना की है किन्तु उनमें भी भावात्मकता परिलक्षित होती है। इन्होंने अपने निबन्धों में विचारों एवं भावों के साथ आत्माभिव्यक्ति को प्रमुखता दी है। इनके निबन्धों में स्वयं के प्रति भक्ति और जीवनानुभूति की प्रधानता पाई जाती है। मनमोहकता, रसानुभूति, भाव-विह्वलता, हृदय रंजकता, कथ्य को गद्य के छोटे-छोटे टुकड़ों में काव्यात्मकता एवं आलंकारिका शैली में प्रतिपादन, कथन की सांकेतिकता प्रणाली एवं लाक्षणिक भावमयी अभिव्यंजना प्रतिपादन, कथन की सांकेतिकता प्रणाली एवं लाक्षणिक भावमयी अभिव्यंजना आदि विशेषताएँ इनके निबन्धों के आकर्षण गुण हैं। भावना, अन्तर्नाद, ठंडे टोछे, साहित्य विहार और तरंगिणी आदि इनके निबन्धों का संग्रह है।

इस काल में विचारात्मक, समीक्षात्मक, व्यक्तिव्यंजक निबंधों के अतिरिक्त कुछ गद्य काव्य निबन्धों की रचना हुई है। गद्य काव्य में भक्ति, प्रेम, करुणा आदि भावनाएँ लघु कल्पना चित्रों के माध्यम से प्रतीक पद्धति पर व्यक्त की गयीं। इसमें संक्षिप्तता, सांकेतिकता, भावुकता, अनुभूति की सघनता और रहस्यमयता आदि विशेषताएँ पायी जाती हैं। गद्य गीत (गद्य काव्य) का प्रारम्भ रायकृष्णदास के साधना संग्रह के प्रकाशन से हुआ। तत्पश्चात् वियोगी हरि के तरंगिणी संग्रह के गद्यगीतों का प्रचलन और भी बढ़ गया। इसके अनन्तर छायावाद युग में गद्य गीतों के रचना की प्रमुखता दिखायी पड़ती है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावन लाल वर्मा, डॉ. रामकुमार वर्मा और अज्ञेय आदि के गद्यगीत भी उल्लेखनीय हैं। इनके बाद भी दिनेश नन्दिनी डालमिया, डॉ. रघुवीर सिंह और रवृक्ष बेनपुरी आदि ने भी गद्यगीतों की सर्जना की है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल युगीन कुछ ऐसे निबंधकार हैं। जिनकी साहित्य सर्जना वर्तमान काल में अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। इनमें से कुछ ऐसे निबन्धकार सर्जना वर्तमान युगीन विशेषताओं को अपने निबंधों में समाहित कर अनवरत रूप से निबन्ध सर्जना में लगे हुए हैं। प्रथम में तो महादेवी वर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी जी की गणना की जा सकती है और द्वितीय में जैनेन्द्रकुमार और अज्ञेय का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायायन अज्ञेय अपने गाम्भीर्यपूर्ण तथा लालित्यपूर्ण निबन्धों के लिए प्रसिद् हैं। इनके निबन्ध अधिकतर यात्रा सम्बन्धी हैं। इन्होंने आत्मकथात्मक, विचारात्मक, व्यक्तिव्यंजक, विवरणात्मक और समीक्षात्मक निबन्ध भी लिखे हैं। इन्होंने अपने विचार प्रधान निबन्धों में साहित्यिक मान्यताओं की स्थापना की है। भाषा के आधुनिकीकरण एवं उनके नये प्रयोग अज्ञेय की मौलिक विशेषता है। इनके निबन्धों में आत्मपरक शैली के दर्शन होते हैं। सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिवेक्षण औरप सन्दर्भों की बहुलता अज्ञेय के निबन्धों की अपनी एक अलग विशेषता है। इनके निबन्धों का संग्रह त्रिशंकु, आत्मनेपद, अरे यायावर रहेगा, एक बूँद सहसा उछली आदि हैं।

हिन्दी निबन्ध का वर्तमान काल (सन् 1955 ई. से अद्यावधि)

इस काल में विचारात्मक निबन्ध कम लिखे गये। समीक्षात्मक निबन्ध, ललित निबन्ध, व्यंग्यात्मक निबन्ध और विभिन्न प्रकार के यात्रा वृतान्त, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, डायरी, भेंट वार्ता, पत्र साहित्य आदि की बहुलता दिखायी पड़ती है। इसमें व्यक्तिव्यंजक निबन्धों की विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। इस काल के निबन्धकारों में डॉ. नगेन्द्र, गजानन माधव मुक्तिबोध, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, ललित विलोचन शर्मा, प्रभाकर माचवे, रामरतन भटनागर, रामविलास शर्मा, भगीरथ मिश्र, इन्द्रनाथ मदान, डॉ. नामवर सिंह, कुबेरनाथ राय, धर्मवीर भारती, ठाकुर प्रसाद सिंह, शिवप्रसाद सिंह, हरिशंकर परसाई, श्रीलाल

शुक्ल, शरद जोशी, डॉ. रघुवंश, रमेश कुन्तल मेघ, रवीन्द्र नाथ त्यागी तथा डॉ. श्री प्रदास आदि हैं।

डॉ. नगेन्द्र मुख्यतः आलोचनात्मक निबन्धकार हैं। इनके निबन्धों में शोध और समीक्षा की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। ये आचार्य शुक्ल एवं फ्रायड की परम्परा के पोषक हैं। इनके निबन्ध शास्त्रीय तर्कशास्त्रीय एवं गवेषणापूर्ण होते हैं। इन्होंने अपने निबन्धों में तुलनात्मक, व्यंग्यात्मक, सम्वादात्मक, भावात्मक, परिचयात्मक, प्रश्नोत्तरात्मक आदि विविध प्रकार की शैलियों को स्थान दिया है। विचार और विवेचन, विवेचन और विश्लेषण, विचार और अनुभूति आपके प्रसिद्ध निबन्ध संग्रह हैं।

गजानन माधव मुक्तिबोध एक गम्भीर-चिन्तन और जीवनन मर्म के वास्तविक अनुभावक थे। उनके निबन्ध मनुष्य के जीवन के संघर्ष को मूर्तिमान करते हैं। इनकी रचनाएँ अधिकांशतः कर्मवीर, हंस, कल्पना, ज्ञानोदय, धर्मयुग और साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि में प्रकाशित होती रही हैं। नए निबन्ध नयी कविता का आत्मसंघर्ष, कामायनी एक पुनर्विचार, एक साहित्यिक की डायरी और नए साहित्य और सौन्दर्य-शास्त्र आदि इनके समीक्षात्मक ग्रंथ हैं। मुक्तिबोध कलाकार की स्थानान्तरगारी प्रवृत्ति पर बहुत जोर देते थे। एक साहित्यिक की डायरी संग्रह डायरी विधा के रूप में लिखे गये निबन्धों का संगलन है जिसमें निबन्धों का प्रारम्भ सीधा-साधा और एकलाप तथा काल्पनिक पात्रों के सम्वादों से आद्यपन्त ओत-प्रोत है।

वर्तमान काल के निबन्धकारों में डॉ. विद्यानिवास मिश्र अग्रणी हैं। यदि कहा जाय कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं आचार्य हजारीप्रदास द्विवेदी के बाद सांस्कृतिक संदर्भों में लोक-परम्परा को रंजक एवं रोचन शैली में अभिव्यक्त करने वाले पण्डित विद्यानिवास मिश्र है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इनके निबन्ध गहन अनुभूति एवं चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति के परिचायक हैं। लोकजीवन तथा लोक संस्कृति के श्रृंगार की भव्यक्ति के साथ जीवन की विविध विसंगतियों एवं विषमताओं का आपके निबन्धों में सुन्दर चित्रण प्राप्त होता है।आपेके निबन्ध राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक और पौराणिक विषोयों से सम्पन्न दिखायी देते हैं। इनमें कहीं-कहीं पर व्यंग्य-विनोद हास-परिहास के साथ-साथ वर्तमान विपथगाओं पर तीव्र कटाक्ष मिलता है, जो राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करने में सक्षम हैं।

समालोचना

आलोचना अंग्रेजी के **critism** शब्द का पर्याय है। हिन्दी में इसके लिए समीक्षा एवं समालोचना शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। आलोचना शब्द संस्कृत की लोच् धातु से बना है जिसका अर्थ है देखना और आलोचना का अर्थ है सम्यक प्रकार से

देखना। अतः साहित्य कृति का सही मूल्यांकन करने वाली प्रक्रिया को आलोचना, समालोचना या समीक्षा कहा जा सकता है।

आलोचक का दायित्व अत्यन्त ही गंभीर होता है इस कारण एक आलोचना को सहृदय, निष्पक्ष एवं प्रबुद्ध होना चाहिए। सूक्ष्म अन्तददृष्टि एवं मौलिक प्रतिभा द्वारा ही वह इस महान दायित्व का निर्वाह करते हुए साहित्य की सही व्याख्या कर सकता है। ऐसा करने पर ही वह लेखक और समाज के साथ सही न्याय करता है। डॉ. श्याम सुन्दरदास के अनुसार अच्छा कवि जीवन की व्याख्या करता है तो एक अच्छा आलोचक इस व्याख्या की व्याख्या करता है।

समालोचना की परम्परा : संस्कृत समालोचना की परम्परा अत्यधिक समृद्ध एवं गौरवशाली है। संस्कृत में भरतमुनि का नाट्य शास्त्र सबसे प्राचीन ग्रंथ है और इसके आधार पर ही रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि तथा औचित्य सिद्धान्तों का विकास हुआ। संस्कृत साहित्य जो हिन्दी समीक्षा का उपजीव्य है, सैद्धांतिक रहा है, व्यावहारिक समीक्षा के तत्व इसमें कम हैं। टीकाओं, सूचियों तथा लक्षण ग्रंथों में व्यावहारिक आलोचना के कुछ रूप दिखलाई पड़ते हैं। फिर भी, इनके महत्व को हम नकार नहीं सकते।[71]

विकासक्रम-हिन्दी समालोचना साहित्य के विकास को चार युगों में रखा जा सकता है –

1. भारतेन्दु युग – सन् 1868 से 1900 ई.
2. द्विवेदी-युग – सन् 1900 से 1920 ई.
3. शुक्ल युग – सन् 1920 से 1936 ई.
4. शुक्लोत्तर-युग – सन् 1936 से वर्तमान तक

भारतेन्दु युग (सन् 1868 से 1900 ई.)

परिस्थितियाँ

पाश्चात्य शिक्षा एवं संस्कृति से बुद्धिजीवी वर्ग प्रभावित होने लगा था। शिक्षा के कारण तथा सुधारवादी आन्दोलनों की प्रेरणा से भारतीयों का ध्यान सामाजिक कुरीतियों एवं दुर्दशा की ओर गया। ऐसी परिस्थितियों में साहित्यकारों ने जन सामान्य को अपने विचारों से अवगत कराने के लिए पत्र-पत्रिकाओं का आश्रय लिया और इन पत्रिकाओं के माध्यम से ही आधुनिक आलोचना का सूत्रपात हुआ।

डॉ. सुधाकर पाण्डेय औ डॉ. भगीरत मिश्र आधुनिक आलोचना का प्रारंभ भारतेन्दु युग से ही मानते हैं। इनके पहले जो टाकाएँ लिखी गयीं। उनमें शंका-समाधान के

माध्यम से आलोचना मिलती है। मानसीनंदन पाठक की मानस शंकावली श्री शिवलाल पाठक द्वारा संपादित मानस मयंक और शिवराम सिंह की मानस तत्व प्रबोधिनी में आलोचना के बीज अवश्य दृष्टिगोचर होते हैं पर आधुनिक अर्थो में ये समालोचन-ग्रंथ नहीं है।

प्रमुख समालोचक

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र नवजागरण काल के अग्रदूत थे। उन्होंने कवित नाटक, निबंध, पत्रकारिता के साथ-साथ समालोचना का भी नयी दिशा दी। भारतेन्दु ने कविवचन सुधा से समालोचना का प्रारम्भ कर तत्कालीन पत्रिकाओं का भी दिशा निर्देशन किया। वैष्णव रस और भारतवर्ष, श्रुति रहस्य आदि निबंधों में उनके समालोचनात्मक दृष्टि से कालिदास, जयदेव, सूरदास आदि के जीवन-चरित भी लिखे हैं। उनकी भाषा नामक पुस्तक सन् 1890 में प्रकाशित हुई थी।

बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन : हिन्दी समालोचना के प्रवर्तकों में बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्योंकि आनंद कादम्बिनी पत्रिका से ही स्तरीय पुस्तक समीक्षा का प्रारम्भ हुआ। उन्होंने आनंद कादम्बिनी में लाला श्रीनिवास दास कृत संयोगिता स्वयंवर नाटक बाबू गदाधर सिंह द्वारा बंग विजेता उपन्यास के हिन्दी अनुवाद तथा भारतेन्दु कृत नीलदेवी की विस्तृत आलोचना कर उल्लेखनीय योगदान दिया है।

बालकृष्ण भट्ट : भट्ट जी ने हिन्दी प्रदीप के माध्यम से हिन्दी - समालोचना के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया। डॉ. रामविलास शर्मा भी बालकृष्ण भट्ट को हिन्दी समालोचना के जन्मदाता के रूप में महत्व देते हैं।[72] भटट्ट जी ने श्रीनिवासदास के संयोगिता स्वंयंवर नाटक की कटु आलोचना की जिसका ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त ही महत्व है। इसके अतिरिक्त उन्होंने नीलदेवी, परीक्षागुरू, एवं एकान्तवासी योगी की भी समालोचना की है।

जगन्नाथदास रत्नाकर कृत धनाक्षरी नियम रत्नाकर की है। विहलालकृत अलंकारादर्श, प्रताप नारायण सिंह कृत रस कुसुमाकर आदि इस युग के प्रमुख लक्षण ग्रंथ हैं। सम्पूर्ण काव्य शास्त्र की दृष्टि से जानकी प्रसाद का काव्य सुधाकर तथा नाट्यशास्त्र की दृष्टि से भारतेन्दु का नाटक ग्रंथ उल्लेखनीय है।

इतिहास ग्रंथों के अन्तर्गत शिवसिंह सेंगर कृत शिवसिंह सरोज तथा जार्ज ग्रियर्सन कृत द मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ नर्दन हिन्दुस्तान की रचना हुई।

सीमाएँ - इस युग की अपनी सीमाएँ हैं। पाश्चात्य और संस्कृत समालोचना का समुचित समन्वय नहीं होने के कारण समीक्षकों में सूक्ष्म दृष्टि का विकास न हो सका था। भारतेन्दु युग में आधुनिक हिन्दी आलोचना का सूत्रपात तो हो गया था किन्तु

तत्कालीन समीक्षकों में न तो सूक्ष्म काव्य सौंदर्य विधायक तत्वों को पहचानने की क्षमता थी और न रचना में निहित जीवन मूल्यों को सौंदर्य तत्व से जोड़कर व्याख्यायित करने की शक्ति।[73]

द्विवेदी युग (सन् 1900 से 1920 ई.)

परिस्थितियाँ : महावीर प्रसाद का अवतरण हिन्दी के बहुमुखी विकास के लिए वरदान सिद्ध हुआ। समालोचना के क्षेत्र में भी गंभीरता आई। सन् 1902 ई. में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने जयपुर से समालोचक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया। इसमें भी गंभीर समालोचनाएं प्रकाशित होती थीं। किन्तु यह पल अधिक समय तक कार्य नहीं कर सका। नागरी प्रचारिणी पत्रिका ने स्तरीय एवं अनुसंधान परक समालोचना के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया। माधवराव सप्रे की छत्तीसगढ़ मित्र पत्रिका में निष्पक्ष समालोचनाएँ प्रकाशित होती थीं।

प्रमुख समालोचक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी : आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य के दिशा-निर्देशक आचार्य हैं। उन्होंने भाषागत परिष्कार और परिमार्जन के साथ-साथ नैतिक-सांस्कृतिक दृष्टि से कठोर अनुशासन नहीं रखा होता तो हिन्दी साहित्य का इतिहास विकास के इस सोपान पर न होता।

द्विवेदी जी के समीक्षात्मक लेखों में हिन्दी कालिदास की समालोचना, कालिदास की निरंकुशता, साहित्य संदर्भ, समालोचना समुच्चय, रसज्ञ रंजन आदि प्रमुख हैं।

मिश्र बन्धु : मिश्र बन्धुओं ने हिन्दी नवरत्न ग्रन्थ के द्वारा तुलनात्मक एवं निर्णयात्मक समालोचना का सूत्रपात किया। मिश्र बन्धु विनोद के तीन खंड सन् 1913 ई.में प्रकाशित हुए इसका चौथा खंड (1934) आधुनिक काल के कवियों से संबद्ध है। उनकी प्रमुख विशेषता यह है कि रीतिकालीन प्रवृत्तियों के होते हुए भी उन्होंने नवीन काव्य प्रवृत्तियों को अपना समर्थन दिया है।

लाला भगवानदीन : रीतिकालीन परम्परा के समीक्षक थे। बिहारी समर्थक होने के कारण उन्होने कृष्ण बिहारी मिश्र के ग्रन्थ देव और बिहारी के उत्तर में बिहारी और देव की रचना कर बिहारी को श्रेष्ठ सिद्ध किया।

अलंकार मंजूषा व व्यंग्यार्थ मंजूषा उनके प्रमुख सिद्धान्त ग्रंथ हैं। उन्होंने अनेक टीका ग्रंथों तथा संपादित ग्रंथों की भूमिकाओं में भी अपने समीक्षात्मक विचार व्यक्त किये हैं। रीतिकालीन परम्परा के समर्थक होने के कारण खड़ी बोली की रचनाओं जैसे मैथिलीशरण गुप्त की भारत-भारती साथ रामचरित उपाध्याय की रामचरित चिन्तामणि आदि के साथ वे समुचित न्याय नहीं कर सके हैं।

बालमुकुन्द गुप्त ने हिन्दी बंगवासी के सहकारी संपादक और भारत मित्रल के

संपादक का कार्य किया। ब्रजभाषा और उर्दू, हिन्दी में बिन्दी, एक लिपि की जरूरत आदि उनके भाषा–सम्बन्धी लेख हैं। इनके अतिरिक्त उन्होने भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों पर भी समालोचनात्मक लेख लिखे हैं। पदमसिंह शर्मा ने पं. ज्वाला प्रसाद मिश्र की बिहारी सतसई की टीका पढ़कर बिहारी के समर्थन में अपने विचार व्यक्त किये।

सीमाएँ : द्विवेदी युग में हिन्दी समालोचना का विकास तो हुआ किन्तु तुलनात्मक समालोचना में तटस्थता के स्थान पर व्यक्तिप्रियता का खुला रूप देखने को मिलता है। इस युग में अंग्रेजी समालोचना के अच्छे ग्रन्थ हिन्दी समोलोचकों के सामने थे परन्तु उनमें से नीर–क्षीर–विवेक के सहारे उपयोगी सिद्धान्तों को अपनाने का प्रयास नहीं के बराबर हुआ।

शुक्ल युग (सन् 1920 से 1936 ई.)

परिस्थितियाँ : सन 1920 से 1936 का यह युग सामाजिक राजनैतिक दृष्टि से तो क्रांतिकारी था ही, पाश्चात्य चिन्तन के प्रभाव की दृष्टि से भी सर्वथा अनूठा था। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में सन 1920 ई. भारत वर्ष के लिए युगान्तर ले आने वाला वर्ष है। नवीन आशा और नवीन आकांशा के प्रति जैसा अडिग विश्वास इस समय दिखाई दिया वह शताब्दियों से अपरिचित–सा हो गया था।[74]

सन् 1905 से शिक्षा का योजनाबद्ध प्रसार हो चुका था। इस पीढ़ी द्वारा संस्कृत और हिन्दी साहित्य चाहे अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पढ़ा गया हो पर उनमें साहित्य समालोचना के आदर्शों के विवेचन का शौक विकसित हुआ। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी की स्नातकोत्तर कक्षाओं के प्ररंभ होने से भी आलोचनात्मक लेखन को काफी बढ़ावा मिला।

गद्य–साहित्य के क्षेत्र में उपन्यास, कहानी एकांकी आदि नयी विधाओं के लिए पाश्चात्य समालोचना को अपनाना आवश्यक हो गया। काव्य के क्षेत्र में छायावादी कवियों पश्चिमी स्वच्छन्दतावाद को अपनाया। नाट्य रचना पर भी पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव पड़ा इस कारण समालोचकों को ध्यान पाश्चात्य साहित्य की ओर गया।

प्रमुख समालोचक

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का गहन अध्ययन किया था। उनकी सूक्ष्म विवेचनी दृष्टि ने युगानुकूल तत्वनों का समाहार कर समालोचना को नई दिशा प्रदान की। इसी कारण वे न केवल युग–प्रवर्तक के रूप में विख्यात हैं।

आचार्य शुक्ल जनवादी परम्परा के समालोचक हैं। प्राचीनरस–सिद्धांत को उन्होंने कतिपय संशोधन के साथ अपनी समीक्षा का आधार बनाया। रस मीमांसा शुक्ल जी का

सैद्धान्तिक समालोचना-ग्रंथ है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास एक लोकप्रिय ऐतिहासिक ग्रंथ है।

चिन्तामणि भाग एक एवं दो में उनके अनेक समालोचनात्मक निबन्ध संकलित हैं। गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास भूमिकाओ के रूप में लिखी गई व्यावहारिका समालोचनाएँ हैं। जायसी ग्रंथावली में कवि जायसी एवं पद्मावत का शोधपूर्ण विवेचन है। उनकी समालोचना मुख्य विशेषता इस प्रकार है।

1. भाव विवेचन में मनावैज्ञानिकता का आधार : आचार्य शुक्ल भावों ने का वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक आधार पर किया है भावों को दो वर्गो में रखा है – सुखात्मक और दुखात्मक। सुखात्मक के अन्तर्गत हास, रति तथा उत्साह और दुखात्मक के अन्तर्गत शोक, भय, क्रोध एवं जगुप्सा हैं। प्रत्येक भाव की अभिव्यक्ति आवेग, प्रत्यय, शरीरगत लक्षण परिवर्तन तथा अन्य चेष्टाओं के माध्यम से होती है।

2. विभाव विवेचन में व्यापकता : शुक्ल जी ने विभाव के क्षेत्र को अत्यन्त व्यापकता प्रदान की है। उन्होंने नरक्षेत्र, नरेत्तर क्षेत्र तथा चराचर क्षेत्र की चर्चा कर अपनी उदार दृष्टि का परिचय दिया है।

3. लोकमंगल का सिद्धान्त : आचार्य शुक्ल की दृष्टि लोकमंगल को सर्वोपरि महत्ता प्रदान करती है। इसी कारण उन्होंने साधनावस्था के काव्य को जनजीवन से जुड़ा काव्य माना है।

4. ऐतिहासिक संदर्भशीलता : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ऐतिहासिक संदर्भ में तुलसी के काव्य को मानवतावादी स्वीकार करते हुए उसकी प्रशंसा की है और रीतिकालीन कवियों की आलोचना की है। इसका एकमात्र कारण यह है कि तुलसी युगीन जनचेतना से जुड़े हैं, रीतिकालीन कवि नहीं जुड़ सके। छायावादी काव्य की वायवीयता के शुक्ल जी छायावाद को भी अपना समर्थन नहीं दे सके।

आचार्य शुक्ल की सीमाएँ : रसवाद के प्रति अटूट निष्ठा तथा व्यक्तिगत आग्रह उनकी समालोचना की सीमाएँ हैं।[75]

शुक्लोत्तर युग (सन् 1936 से वर्तमान तक)

परिस्थितियाँ : प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन के साथ ही साहित्यिक जगत में वैचारिक क्रांति का स्वर मुखरित हुआ। मार्क्स की चिन्तनधारा ने दलित और सर्वहारा वर्ग की महत्ता स्थापित करते हुए पूँजीवादी सामन्ती वर्ग के प्रति विद्रोह करने की शक्ति प्रदान की। मार्क्सवादी चिन्तन समर्थन करने वाले साहित्य की समीक्षा के लिए मार्क्सवादी समालोचना का विकास हुऐ।

फ्रायड, एडलर, युग आदि मनोवैज्ञानिकों ने गूढ़ रहस्यों को उजागर कर सम्पूर्ण संसार को आश्चर्यचकित कर दिया। साहित्यकार भी इस ओर आकृष्ट हुए। ऐसी कृतियों की समीक्षा मनोवैज्ञानिक समालोचना कहलाई। द्वितीय महायुद्धोत्तर परिस्थितियों में जब मानव अस्तित्व का संकट उपस्थित हुआ तब कीर्के गार्ड, सार्त्र आदि की विचारधारा ने वरण की स्वतंत्रता का उपयोग करते हुए अपने अस्तित्व की रक्षा पर बल दिया। अस्तित्ववादी विचारधारा के प्रभावित रचनाओं की समीक्षा के लिए अस्तित्ववादी अथवा प्रोयगवादी समालोचना विकसित हुई।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी : छायावादी काव्य प्रकृति का गंभीर एवं सूक्ष्म अनुशीलन करने के कारण वाजपेयी जी की समालोचना छायावादी, स्वच्छन्दतावादी या सौष्ठववादी कहलाई। आचार्य वाजपेयी आधुनिक साहित्य के मर्मज्ञ, अध्येता एवं सौन्दर्य दृष्टि सम्पन्न समालोचक हैं। हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द, आधुनिक साहित्य, नया साहित्य पद्धति के प्रमुख तथ्य निम्नानुसार हैं –

समीक्षा के सप्तसूत्र : उन्होंने अपने ग्रंथ हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी में आलोचना के सप्त सूत्रों का उल्लेख किया है –

1. रचना के कवि की अन्तर्वृत्तियों का अध्ययन
2. रचना में कवि की मौलिकता, शक्तिमत्ता और सृजन की लघुता विशालता
3. रीतियों, शैलियों और रचना के बाह्यांगों का अध्ययन
4. समय और समाज तथा उनकी प्रेरणाओं का अध्ययन
5. कवि की व्यक्तिगत जीवनी और रचना पर उसके प्रभाव का अध्ययन
6. कवि के दार्शनिक, सामाजिक और राजनैतिक विचारों आदि का अध्ययन
7. काव्य के जीवन सम्बन्धी सामंजस्य और संदेश का अध्ययन।

इन सत्व सूत्रों के आधार पर ही वे छायावादी कवियों के साथ न्याय कर सकें। उनकी व्यावहारिक समालोचना में प्रभावी और निर्णय का समान महत्व है।

प्रगतिवाद के दिशा–निर्देशक : आचार्य वाजपेयी ने प्रगतिवाद की प्रगतिशीलता का हार्दिक समर्थन करते हुए उसका स्वस्थ मार्गदर्शन भी किया।

1. इसके लिए सिद्धान्तों की जीवन चेतना से संपृक्ति अनिवार्य मानी।

2. परिवर्तनशीलता के लिए सूक्ष्म परिवर्तन के क्रम बोध के साथ नवीन समस्याओं पर जागरुक दृष्टि होना भी आवश्यक है।

3. साहित्य में समस्याओं की प्रस्तुति के लिए कलात्मक स्वरूप के प्रति सजगता भी जरूरी है।

4. अनुभूमि को महत्व आचार्य वाजपेयी अनुभूति को साहित्य के मूल प्रेरणा स्वीकार करते हैं। उनकी मान्यता है कि यदि अनुभूति सच्ची होगी तो अभिव्यक्ति भी प्रभावपूर्ण होगी।

5. काव्य शास्त्र का विशेष ज्ञान : वाजपेयी जी ने भारतीय ऐं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का गहन अध्ययन किया था।

6. आधुनिक साहित्य पर विशेष ध्यान : उन्होंने आधुनिक साहित्य को आधुनिक दृष्टि से समझने का प्रयास किया। आधुनिक साहित्य के स्वरूप और विकास का उन्होने विशेष अध्ययन किया है।

सीमाएँ : सैद्धान्तिक समालोचना के सप्त सूत्रों में से उन्होंने प्रथम चार को ही विशेष महत्व दिया, इस तरह वे अपने सिद्धान्तों के साथ ही न्याय नहीं कर सके हैं। उनकी जिस उदार दृष्टि ने छायावाद को विशिष्ट स्थान दिलाया, प्रगतिवाद का समर्थन किया वही दृष्टि प्रयोगवाद और नयी कविता को सहानुभूति नहीं दे सकी। प्रेमचन्द के साथ थी न्याय नहीं कर पाये।[76]

संदर्भ सूची

1 हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 11

2. हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 11–15

3. हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास क्रम आचार्य उमेश शास्त्री, देवनागर प्रकाशन, चौडा रास्ता, जयपुर, राजस्थान, पृष्ठ 55 से 65

4. गद्य साहित्य का उद्‌भव और विकास (गद्य विशेषांक का संग्रह) संपादक डॉ. शम्भुनाथ पाण्डेय प्रकाशक फूलचन्द सरस्वती संवाद, आगरा, पृष्ठ 202

5. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास लेखक : श्री सोमनाथ गुप्त प्रकाशक इंद्रनारंग हिन्दी भवन, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 1

6. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास लेखक : श्री सोमनाथ गुप्त प्रकाशक इंद्रनारंग हिन्दी भवन, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 6

7. हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन लेखन डॉ. ब्रह्मदत्त शर्मा, प्रकाशक फूलचन्द प्रतापचन्द, संचालक सरस्वती पुस्तक सदन, मोतीकटरा, आगरा, पृष्ठ 9 से 10

8. हिन्दी कहानी स्वरूप विकास और प्रतिनिधि कहानीकार प्रकाश रा. दीक्षित, प्रकाशक : विनोद पुस्तक मन्दिर होस्पिटल रोड, आगरा, पृष्ठ 3 से 4

9. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में शिल्पविधि का विकास, डॉ. तहसीलदार दूबे, प्रकाशक : डॉ. मंगोरानी द्वारा नटराज पब्लिशिंग, आर्यसमाज मन्दिर के पास कंरनाल, हरियाणा पृष्ठ 14

10. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में शिल्पविधि का विकास, डॉ. तहसीलदार दूबे, प्रकाशक : डॉ. मंगोरानी द्वारा नटराज पब्लिशिंग, आर्यसमाज मन्दिर के पास कंरनाल, हरियाणा पृष्ठ 2

11. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास प्रयोग, डॉ. गोविन्दजी, कल्पना प्रकाशन, मेरण कैन्ट, पृष्ठ 39

12. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास प्रयोग, डॉ. गोविन्दजी, कल्पना प्रकाशन, मेरण कैन्ट, पृष्ठ 38

13. हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 64 से 85

14. हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 87 से 88

15. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 (परिभाषिक शब्दावली), सं. धीरेन्द्र वर्मा, प्रकाशक : ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृष्ठ 181

16. हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 92 से 93

17. कथा निकष, प्रतिनिधि कहानीकारों की श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह सम्पादक, डॉ. हरिशरण शर्मा, पृष्ठ 3

18. कथा निकष, प्रतिनिधि कहानीकारों की श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह सम्पादक, डॉ. हरिशरण शर्मा, पृष्ठ 5 से 6

19 हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 93 से 112

20. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 8

21. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 (परिभाषिक शब्दावली), सं. धीरेन्द्र वर्मा, प्रकाशक : ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृष्ठ 871

22 महादेवी का गद्य साहित्य विश्लेषण और स्वरूप, डॉ. गोवर्द्धन सिंह, प्रकाशक : अनुभव प्रकाशन, श्रीनगर, कानपुर, पृष्ठ 39

23. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 9

24. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 13 से 14

25. गद्य के नए आयाम ओमप्रकाश सिंहल, प्रकाशक : पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी, शैक्षिक प्रकाशक, करौलबाग, नई दिल्ली, पृष्ठ 7 से 11

26. हिन्दी और मराठी के रेखाचित्र का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. सुरेश कुमार, प्रकाशक : अन्नपूर्णा प्रकाशन, साकेतनगर, कानपुर, पृष्ठ 9

27. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 1

28. हिन्दी और मराठी के रेखाचित्र का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. सुरेश कुमार, प्रकाशक : अन्नपूर्णा प्रकाशन, साकेतनगर, कानपुर, पृष्ठ 9

29. हिन्दी और मराठी के रेखाचित्र का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. सुरेश कुमार, प्रकाशक : अन्नपूर्णा प्रकाशन, साकेतनगर, कानपुर, पृष्ठ 10 से 11

30. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 2

31. महादेवी का गद्य साहित्य विश्लेषण और स्वरूप, डॉ. गोवर्द्धन सिंह, प्रकाशक : अनुभव प्रकाशन, श्रीनगर, कानपुर, पृष्ठ 55

32. हिन्दी रेखाचित्र सिद्धान्त और विकास, डॉ. मक्खनलाल शर्मा, प्रकाशक : शब्द और शब्द, आगरा, उत्तरप्रदेश, पृष्ठ 28 से 31

33. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 4

34. गद्य के नए आयाम ओमप्रकाश सिंहल, प्रकाशक : पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी, शैक्षिक प्रकाशक, करौलबाग, नई दिल्ली, पृष्ठ 18 से 22

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

35 हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 8
36. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 (परिभाषिक शब्दावली), सं. धीरेन्द्र वर्मा, प्रकाशक : ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृष्ठ [illegible]
37. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 16
38. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 16
39. हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, नई दिल्ली, पृष्ठ 175 से 178
40. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 22
41. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 23
42. हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 173
43. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 25 से 27
44. हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 180
45. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 35
46. हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 187
47 हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 37
48. हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 189
49. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 37 से 39
50. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 39 से 41
51. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में शिल्पविधि का विकास, डॉ. तहसीलदार दूबे, प्रकाशक : डॉ. मंगोरानी द्वारा नटराज पब्लिशिंग, आर्यसमाज मन्दिर के पास कंरनाल, हरियाणा पृष्ठ 195 से 197
52. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 43
53. हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 163
54. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 28
55. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 29
56. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 29–30
57. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 32
58. हिन्दी गद्य की नवीन विधायें, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक : साहित्य रत्नालय, पृष्ठ 32 से 34
59. हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 169
60 हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 170
61. हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 171
62 हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 171
63. हिन्दी निबन्ध : एक यात्रा सम्पादक सिद्धिनाथ श्रीवास्तव तथा विश्वम्भरनाथ दूबे, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 3
64. काव्य के रूप गुलाब राय, प्रकाशक : आत्माराम एण्ड सन्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 234
65. केरल का स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य (डॉ. एन. चन्द्रशेखर नायर के विशिष्ट संदर्भ में डॉ. रेखा शर्मा, प्रकाशक : अभिषेक प्रकाशन, ब्रह्मपुरी, दिल्ली, पृष्ठ 311
66. हिन्दी साहित्य में निबध और निबंधकार डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त, प्रकाशक : जीत मल्होत्रा रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 10
67. हिन्दी गद्य साहित्य का विकास क्रम आचार्य उमेश शास्त्री, देवनागर प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ 67
68 हिन्दी निबन्ध, प्रभाकर माचवे, राजकमल पब्लिकेशन लिमिटेड बम्बई के लिए श्री गोपीनाथ सेठ, दिल्ली, पृष्ठ 10
69. द्विवेदी युगीन निबन्ध साहित्य गंगाबक्श सिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, पृष्ठ 8 से 9
70 हिन्दी निबन्ध एक यात्रा, सम्पादक सिद्धनाथ श्रीवास्तव तथा विश्वम्भरनाथ दूबे, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 13
71. हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 130
72. हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 132
73. हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 134
74. हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 135
75. हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 144
76. हिन्दी गद्य–साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 142 से 145